सत्यापन क्रमांक :
RAJHIN/2015/60530

ओ३म्

महर्षि दयानन्द स्मृति प्रकाश

हिन्दी मासिक

वर्ष : ५ अंक : ६ १ जून २०१६ जोधपुर (राज.) पृ.:३६ मूल्य १५० ₹ वार्षिक

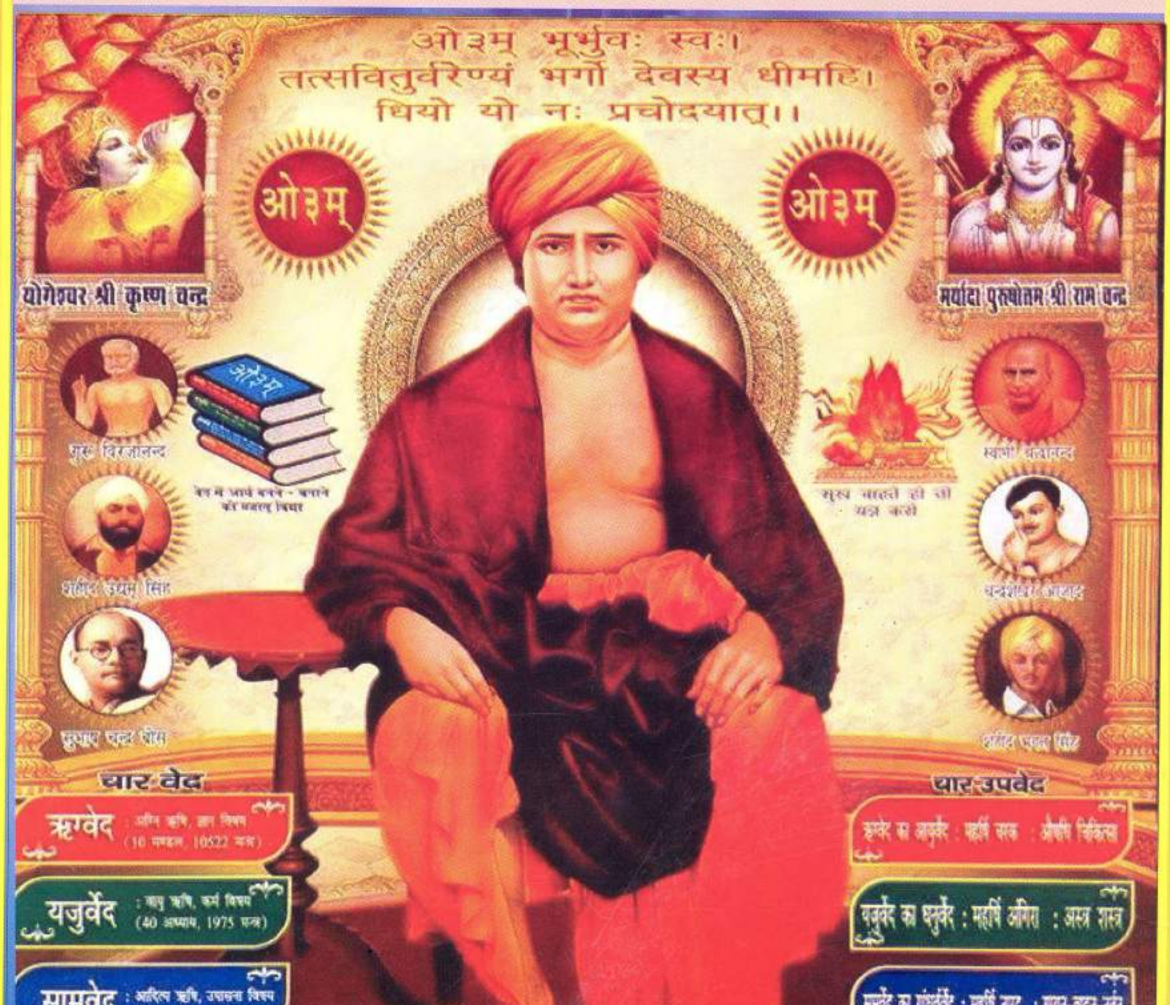

महर्षि दयानन्द सरस्वती

महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मृतिभवन में आर्यवीरदल शिविर की झलकियां

शिविरारम्भ पर ध्वजारोहण व संबोधन करते आचार्य सत्यानन्द सत्यानन्द वेदवागीश एवं सामुहिक व्यायाम

रा.कै.कोर थलसेना और वायुसेना अधिकारियों से प्रशिक्षण प्राप्त करते आर्यवीर

मंच की ओर बढ़ते आचार्यश्री, मुख्य अतिथि जयनारायण व्यास विवि के कुलपति श्रीमान गुलाबसिंहजी को महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मृति भवन न्यास की गतिविधियों का चित्रसंचय दिखाते न्यास मंत्री जी एवं मंच को सलामी देते गुजरते शिविरार्थी आर्यवीरों की टोलियाँ। नीचे मंच के बायीं ओर रस्सी मलखंभ देखते मचंस्थ महानुभाव

कृण्वन्तो विश्वमार्यम् । -ऋग्वेद ९।६३।५

सबको श्रेष्ठ बनाओ

महर्षि दयानन्द स्मृति प्रकाश का मुख्य प्रयोजन

महर्षि दयानन्द सरस्वती के व्यक्तित्व, कृतित्व, व उनके द्वारा लिखित समस्त साहित्य तथा उनके सार्वभौमिक अद्वितीय कार्यों व सिद्धांतों का प्रचार-प्रसार, स्थापना व व्यवहार में साकार करने के लिये कार्य करना ।

महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मृति भवन न्यास, जोधपुर का मुखपत्र

महर्षि दयानन्द स्मृति प्रकाश

वर्ष : ५ अंक : ६

दयानन्दाब्द : -१९६

विक्रम संवत् : ज्येष्ठ २०७६

कलि संवत् ५१२०

सृष्टि संवत् :१,९६,०८,५३,१२०

मार्गदर्शक

पं. सत्यानन्दजी वेदवागीश,

सम्पादक मण्डल :

प्रा. राजेन्द्र जिज्ञासु, अबोहर

डॉ. सुरेन्द्रकुमार, हरिद्वार

डॉ. वेदपालजी, मेरठ

पं. रामनारायण शास्त्री, सिरोही

आचार्या सूर्यादेवी चतुर्वेदा

कार्यवाहक सम्पादक :

कमल किशोर आर्य

Email: sampadakmdsprakash@gmail.com

9460649055

प्रकाशक : 0291-2516655

महर्षि दयानन्द सरस्वती

स्मृति भवन न्यास, जसवन्त कॉलेज

के पास, जोधपुर ३४२००१

लेख में प्रकट किए विचारों के लिए सम्पादक उत्तरदायी नहीं है । किसी भी विवाद की परिस्थिति में न्याय क्षेत्र जोधपुर ही होगा ।

Web.-www.dayanadsmritinyas.org.

वार्षिक शुल्क :१५० रुपये

आजीवन शुल्क : ११०० रुपये

(१५वर्ष)

अनुक्रमणिका

	क्या	कहाँ
१.	सम्पादकीय....	४
२.	स्तुतिविषय.....	११
३.	वेद-वचन.....	१२
४.	बल के उत्सवों में...	१४
५.	ऋषिगाथा......	१५
६.	दयानन्द कौन है.	१६
७.	आर्यसमाज का इतिहास	२७
८.	अथऋग्वेदादि भाष्यभूमिका....	३१
९.	आर्यवीरों हेतु शिविर आयोजन....	३४

महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मृति भवन न्यास

बैंक ऑफ बडौदा खाता संख्या-01360100028646

IFSC BARB0JODHPU

यह पांचवा अक्षर जीरो है

२०१६ के चुनावः भारतीय अस्मिता की जीत और रणभेरी

वर्ष २०१६ में हुए भारत के आम चुनावों में भारतीय जनता पार्टी ने बहुत बड़ी विजय प्राप्त की है। कुल ५४२ संसदीय निर्वाचन क्षेत्रों में मतदान हुआ, जिनमें से भारतीय जनता पार्टी नीत राष्ट्रीय लोकतांत्रिक गठबंधन के कुल ३५३ सांसद बने जिनमें अकेले भाजपा के ३०३ सांसद हैं। संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन को ६१ सीटें मिली हैं, जिनमें अकेली कांग्रेस की ५२ सीटें हैं। ६८ सीटें अन्य दलों और निर्दलीय सांसदों ने जीती है।

विज्ञ पाठकवृंद ने राजनैतिक पंडितों के बहुत से विश्लेषण पढ़ेसुने होंगे। मैं इतनी सी बात ध्यान में लाना चाहता हूँ कि वर्ष २०१४ के संसदीय चुनावों में राष्ट्रीय लोकतांत्रिक गठबंधन ने ३५४ सीटें जीती थी। वर्ष २०१६ के आम चुनाव में एक सीट कम हुई है। यूपीए ने २०१४ के आम चुनाव में ६६ सीटें जीती थी अर्थात उसे २५ सीटों का लाभ हुआ है जिसमें कांग्रेस को ८ सीटों का लाभ हुआ है। अन्य दलों में एनडीए के घटकदल गत लोक सभा में ३७ सीटों वाली तमिलनाडु में सत्तारूढ़ एआईएडीएमके की लोकसभा में एक सीट रह गयी है। एनडीए से अलग हुई तेलुगूदेशम पार्टी एक चौथाई से भी कम पर सिमट गई। तृणमूल कांग्रेस को एक तिहाई नुकसान हुआ। इसप्रकार भाजपा मजबूत हुई, एनडीए लगभग यथावत रहा। कांग्रेस और यूपीए भी आगे बढे हैं, किन्तु भारत में तीसरे मोर्चे को धक्का लगा है मानो भारत अब संकीर्ण विचारधारा वाले दलों की क्षुद्र नीतियों की खिचड़ी नहीं चाहता।

कुछ माह पहले जिन तीन राज्यों में कांग्रेस की सरकारें आई थीं, उन में संसदीय चुनावों में कांग्रेस का सूपड़ा साफ हो गया। भले ही राजनैतिक दल और पंडित कुछ भी कहते हों लेकिन जनता अच्छी तरह जानती है कि देश की बागडोर किसे सौंपनी है और राज्य की बागडोर किसे। पाठकवृन्द को भी याद होगा सोशल मीडिया पर राजस्थान के विधानसभा चुनाव के समय प्रचलित एक नारा **"मोदी थासूँ वैर नहीं, पर, वसुंधरा थारी खैर नहीं"**। राजस्थान की जनता ने मोदीजी को सूचित करके राजस्थान में भाजपा को खारिज किया था। यदि इसका मतलब कांग्रेसी मुख्यमंत्री ने यह लगाया कि उन्हें जनता ने सिर पर बिठा लिया है, तो इस भ्रम को भी जनता ने उनके गृह जिले में उन्हीं के विधानसभा क्षेत्र में भी पछाड़ते हुए उनके सुपुत्र को अस्वीकार कर दिया। यह बहुत बड़ी बात है कि कुछ महीनों के अंतराल में जनता ने राज्यों और राष्ट्र के लिए अलग–अलग दलों के प्रतिनिधि चुने हैं। इन ऐतिहासिक चुनावों के बहुत से निहितार्थ है, जिनपर विचार आवश्यक है।

१. कारगर मुद्देः इन लोकसभा चुनावों में पिछले चुनावों की भाँति गरीबी, बेरोजगारी, महंगाई, खेती और किसान कल्याण जैसे मुद्दे उठे और नेपथ्य में चले गए। भ्रष्टाचार और संस्थाओं के दुरुपयोग जैसे मुद्दों के प्रति जनता उदासीन रही। राष्ट्रवाद तथा विपक्ष के दोष मुख्य मुद्दों के रूप में उभर कर सामने आए। मोदीजी ने सर्जिकल स्ट्राइक एवं बालाकोट को खूब भुनाया। विपक्ष द्वारा इन्हें प्रश्नगत करने को देशद्रोह प्रचारित किया, सेना पर अविश्वास बताया। नामदार और

चौकीदार पर, राष्ट्रवाद और परिवारवाद पर, हिन्दुत्व की अस्मिता और छद्मधर्मनिरपेक्षता पर, आतंकवाद के समर्थन और विरोध पर मतविभाजन हुआ। **चुनौती:** चुनाव संपन्न हो जाने के बाद अन्य सुप्त और उपेक्षित मुद्दों पर अधिक ध्यान देना होगा क्योंकि वे जनता की दिनचर्या और अस्तित्व से जुड़े हैं व इनकी उपेक्षा नहीं हो सकती।

२. जिम्मेदार विपक्ष का अभाव: विपक्षी दलों का जो हाल हम दीर्घकाल से देख रहे हैं उससे वे राष्ट्र के गंभीर मामलों में निर्णय लेने हेतु सरकार के परिपक्व साझीदार होने की योग्यता ही नहीं रखते। संभवत इसीलिए मोदी सरकार ने रक्षा मामलों में विपक्ष को विश्वास में न लेते हुए एकाकी (आइसोलेटेड) निर्णय की नीति को अपनाया और महत्वपूर्ण रक्षा मामलों में विपक्ष को विश्वास में नहीं लेने की एक परंपरा डाली है। एकाकी निर्णय के कारण ही विपक्ष सेना के अभियान को प्रश्नगत करता रहा और खुद की किरकिरी कराता रहा है, क्योंकि खुद निर्णय में सम्मिलित न था। भाजपा ने चुनाव अभियान में इस बारे में खूब तंज कसे। **दो चुनौतियाँ सामने हैं।** पहली है कि यह परंपरा भविष्य के लिए बिना ठोस आधार के नजीर बन जाए तो अच्छी नहीं है। दूसरी यह है कि सत्तापक्ष और विपक्ष मुद्दों की बजाए स्वभाव से प्रतिद्वंद्वी ही नहीं शत्रु बन गए हैं, जिसका कारण सत्ता में सेवा के नाम पर मेवा, धन, प्रभुत्व, सुरक्षा, दण्ड, उत्तरदायित्व से पलायन और निरंकुशता का स्वाद है।

३. छद्मधर्मनिरपेक्षता के नाम पर हिन्दुत्व विरोध स्वीकार्य नहीं: इन चुनावों ने सिद्ध किया है कि राजनैतिक दलों द्वारा छद्मधर्मनिरपेक्षता के नाम पर भारत में आयातित संप्रदायों का तुष्टिकरण और भारत के मूल संप्रदायों का विरोध अब स्वीकार्य नहीं होगा। स्वतंत्र भारत में धर्मनिरपेक्षता का नारा चलने के जो कारण थे वे कारण अब नहीं रहे हैं। इसका खुलासा आवश्यक है। स्वतंत्रता के बाद भारत में कुछेक सत्ताधीश परिवारों को छोड़कर जो मुसलमान शेष रह गए थे, वे वस्तुतः परिवर्तित और इस कारण से हिन्दुओं द्वारा उपेक्षित मुसलमान थे, जिनके घरों में अस्सी के दशक तक शादियों में हिन्दू देवीदेवताओं के गीत गाए जाते थे, संतान के हिन्दू नाम के आगे कभी कभी खॉ लग जाता था, होली की गैर में उनको न्यौंता नहीं देने पर वे नाराज होते थे, दीपावली को उनके घर दीप जलते थे, मंदिरों में कथा सुनने जिनके घरों की औरतें आती थीं और रामलीला देखने तो सारा परिवार आता था। उच्च जाति के हिन्दुओं ने इनको अपने से उतना ही अलग समझा जितना वे हिन्दुत्व में छुआछूत को मानते थे और मुस्लिमों के यहॉ ब्याहशादियों में पहले रसोई हिन्दू सम्हालते थे और हिन्दुओं के खाना खा लेने के बाद मुस्लिम रसोई में कदम रखते थे। इसका कारण मांसाहार आदि था, जिसे मुस्लिम राजीखुशी स्वीकार करते थे। इस अपनत्व के कारण कभी भी प्रकट ध्रुवीकरण नहीं था। सब जानते थे कि मुसलमान कांग्रेस को ही वोट देगा। इस ध्रुवीकरण से कोई वैमनस्य नहीं था। मुख्यतः गांधी और कांग्रेस की तुष्टीकरण की नीति के कारण कांग्रेस के तारणहार स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज ने कांग्रेस से स्वयं को अलग किया था। आजादी के बाद कांग्रेस उस नीति पर अधिक घातक रूप से देश में रह गए मुसलमानों को अधिक पीड़ित, वंचित और अनाथ मानकर चलने लगी। फलतः देश में मदरसों और इस्लामी संस्थानों की बाढ़ आ गई। सत्तर और अस्सी के दशक के लगभग पैट्रो डालर के प्रभाव से भारत में चले तबलीगी जमात के मिशन ने मुस्लिमों में कट्टरता भर आग

में घी डाला और उसके बाद तो आईएसआईएस के स्लीपर सैल तक आज भारत में मौजूद है। अंतर्राष्ट्रीय समाचारों को पढ़कर तो अब इससे मनाही की ही नहीं जा सकती कि चीन जैसे नास्तिक सत्ता ने भी कट्टरता, असहिष्णुता और आतंक की जड़ मदरसों और मस्जिदों को आड़े हाथों लिया है। बड़े दुःखपूर्वक यह लिख रहा हूँ कि इस कट्टरता का कारण इस्लामी शिक्षा ही है जो गैरमुस्लिम से असीम असहिष्णुता और वैर का उपदेश मुसलमानों को देती है; इसका पालन न करने वाले मुस्लिमो को धिक्कारती है। पूरी जिम्मेवारी से दो बार कुरान पढ़कर ये शब्द लिख रहा हूँ। यही हाल बाइबिल की शिक्षा का है। इतिहास साक्षी है कि हिन्दुओं ने विधर्मियों पर तलवार लटकाकर धर्मपरिवर्तन नहीं कराया, छल से भी नहीं कराया, धन से भी नहीं कराया, खतरे में तो हिन्दुत्व और देश की अखण्डता रही है, लेकिन इस्लाम खतरे में बताकर देश तोड़ा और पुनः वही राग है। तात्पर्य यह है कि देश में समरसता आयातित संप्रदायों की सहिष्णुता और षड्यंत्रों पर निर्भर करती है। इस खुलासे के बाद इन चुनावों का संदेश समझ में आ ही जाना चाहिए कि अपनी भूमि पर जिन संप्रदायों का अत्याचारी शासन सहन कर लिया, अपनी मातृभूमि के टुकड़े जिनके लिए सत्ताधीशों को करने दिए, अब पुनः उन्हीं से धर्मनिरपेक्षता, समरसता या तुष्टीकरण के नाम पर ठगे जाना हिन्दू को स्वीकार्य नहीं है। **दो चुनौतियाँ:** अब बारी देश तोड़ने वाले या देश में ही भारत वासियों को, भारत के सन्तों को ब्लडी इण्डियन मानने और कहने वाले सम्प्रदायों का दायित्व है कि वे देश के लिए संकीर्ण, असहिष्णु और हिंसक उपदेशों का क्यों और कितना त्याग करते है?दूसरे हिन्दू अपने पेट और हाथ बड़े और सशक्त कर सबको अपने में कैसे समा सकता है?

४. भारतीय संस्कृति और अस्मिता का प्रश्नः संसदीय चुनावों में जनता ने संदेश दिया है कि राष्ट्रीय अस्मिता से खिलवाड़ बर्दाश्त नहीं करेगी। हिन्दू वोटों हेतु गांधी सन्तति के मंदिरों में जाने पर मोदीजी व भाजपा नेताओं ने रामसेतु मामले में कांग्रेसकालीन हलफनामे सहित इतिहास का जिक्र कर खिल्ली उड़ाई कि यह गाँधी परिवार का नाटक है, और भारत की जनता अब भारतीय अस्मिता से खिलवाड़ नहीं करने देगी। **एक चुनौती भारतीय अस्मिता और संस्कृति की पहचान और स्वीकृति की है।** कहा जाता है कि भारत बहुत सी संसतियों का संगम है! वस्तुतः समरसता के अभाव में यह संगम तो नहीं ही है। हॉ! यह कह सकते हैं कि भारतीय संस्कृति को सहेजने वाले विराट वितान का स्थान छोटी छोटी छतरियों ने ले लिया तो इतनी बिरंगी हो गई कि भाई भाई को पराया मान बैठे और अपने अनुयायियों तक के गुलाम हो गए। इसी बीच बहुत सी आयातित संसतियों ने भी डेरा डाल दिया है और स्वयं को अक्षुण्ण रखते हुए प्रत्येक संसति भारत पर अपना हक जमा रही है। आयातित संसतियों को पालने वालों में देशी कितने हैं और विदेशी कितने हैं? जो विदेशी है वे अपनी जड़ें भारत में नहीं मानते तो भी और यदि वे स्वयं को भारत का विजेता मानते हैं तो भी भारत में स्वीकार्य नहीं हो सकते। लेकिन जिनका खून मूल रूप से भारतीय है और जो विदेशी संप्रदाय या संसति में रंगे हुए हैं उनका क्या?जापानी जूता, इंग्लिशतानी पतलून और रूसी टोपी पहनकर दिल हिंदुस्तानी हो सकता है; तो अरबी मूल के मत अपना कर कोई भारतीय क्यों नहीं हो सकता?**दूसरी चुनौती प्रतिबद्धता की** आती है कि विदेशी मत अपनाने के बाद वह किसके प्रति प्रतिबद्ध है?दो मतों के प्रवर्तक ग्रंथ घोर असहिष्णुता

का संदेश देते हैं जिसके कारण ये मत जहॉ भी फैले; अपने अलावा किसी को सहन नहीं किया। कई जगह के तो मूल निवासियों को बिल्कुल ही समाप्त कर दिया या दोयम दर्जे का नागरिक बना दिया। अमेरिका और ऑस्ट्रेलिया लंबे समय तक इसका उदाहरण रहे। भारत में भी इस्लामी अत्याचार तो किसी से छुपा नहीं है; अंग्रेजों के समय भी कुत्ते और भारतीयों को समान समझा जाता था। इसीलिए प्रतिबद्धता की चुनौती मुख्य है। यदि धर्म ग्रंथों को पत्थर की लकीर समझते हैं तो सारा विश्व इसके परिणाम देख ही रहा है। यदि दीनीतालीम और परदुःखकारी व्यवहार को दुनियावी शिक्षा और शिष्टाचार पर तरजीह दी जाती है, तो भारत में समरसता कैसे आएगी?सातवीं शताब्दी से लाखों ललना–लाल खोकर, अत्याचार सहकर, जजिया देकर, देश के टुकड़े कराकर अब जागे हिन्दुओं की लम्बी गरदन क्या बारबार काटने के लिए है?चुनावों का संदेश तो यही है कि हिन्दू अब तो गरदन नहीं ही कटाएगा। ये चुनाव हिन्दुओं की सहनशीलता की सीमा को दर्शाता है। **तीसरी चुनौती हिन्दुओं के आत्मविश्लेषण, आत्मपरिवर्तन और जड़ता से उठकर परमपुरुषार्थी बनने की है।** यह कटु सत्य है कि तलवार के अलावा भी हिन्दुओं के विधर्मी बनने के पैट्रो और यूरो डॉलर, जन्मना जातिवाद, तज्जनित छुआछूत, भेदभाव, ऊँचनीच, शिक्षा से वंचना, हिन्दुत्व का छुईमुई होना आदि बहुत कारण है, जिनको पूर्व में बलात् परिवर्तित हुए मुस्लिम ईसाइयों के वंशजों के जेहन में भी ठूँस दिया है। चिंता इस बात से है कि आज भी दूल्हे घोड़ी से उतारे जाते हैं, प्रेमी और प्रेमिकाएँ मार दी जाती हैं, कुँए से लेकर श्मसान तक बहुतों को संघर्ष करना पड़ता है। ऐसी हालत में वोट के लिए एक हुआ हिन्दू क्या इन दुर्गुणों के रहते अपने अस्तित्व के लिए क्या एक होगा?क्या अपने को सवर्ण कहने वाले लोग अन्त्यजों से रोटी बेटी का संबंध बनाएंगे?विखण्डित हिन्दू घरवापसी अभियान भी कैसे चलाएगा। क्या उक्त बुराइयों युक्त रौरव नरक में विधर्मियों को आमंत्रित करेगा? यदि नहीं और वोट के अलावा वास्तविक धरातल पर हिन्दू विखण्डित ही रहा, साम्प्रदायिक ऐक्य भी संभव न हुआ तो इन सब में से भारतीय अस्मिता का प्रतिनिधित्व कौन सी संसति करेगी–यह यक्ष प्रश्न है! **चौथी बहुत बड़ी चुनौती हिन्दुओं के जड़ताग्रस्त रहते असहिष्णु बन जाने की है।** मूल अस्मिता या संस्कृति तक पहुँचने के लिए या नयी सर्वस्वीकार्य अस्मिता या संस्कृति के निर्माण के लिए ही सही, कुछ तो कसौटियॉ बनानी पड़ेंगी। एक सामान्य विवेक का व्यक्ति भी सोच सकता है कि भारतीय अस्मिता और संस्कृति का प्रतिनिधित्व यदि निरीह पशुओं की हलाली नहीं कर सकती तो झटका भी नहीं कर सकता; हलाला, पुरुष की पसली से उत्पन्न मानकर नारी को दिया दोयम दर्जा नहीं कर सकता तो देवदासी, सतीप्रथा और नारी को नरक का द्वार और ताड़नपात्र मानने वाली परंपरा भी नहीं कर सकती; कबीलाई संस्कृति, वैमनस्य और हिंसा फैलाने वाले, समन्वय और संवाद का मार्ग बंद करने वाले ग्रंथ नहीं कर सकते तो आधी आबादी को लिंग के आधार पर और शेष में से तीन चौथाई आबादी को जन्म के आधार पर शिक्षा और समानता से वंचित करने वाले और परस्पर विरुद्ध बातों वाले ग्रंथ भी नहीं कर सकते। संक्षेप में, जिन बातों से तर्क, युक्ति, प्रमाणहीन इल्जामी जवाब मात्र पैदा होते हैं, वे बातें भारतीय संस्कृति का प्रतिनिधित्व नहीं कर सकेंगी। अर्थात् स्वयं को इस धरती का स्वामी कहने वाले हिन्दू को भी अपनी निर्द्वन्द्व और निर्भ्रान्त अस्मिता सामने लानी होगी। नहीं तो क्या संघर्ष अवश्यंभावी है?यदि संघर्ष रोकना है तो

पाँचवीं चुनौती आर्यसमाज के समक्ष है कि क्या वह घोषित विरोधियों के अलावा, अपनों के भी भयानक जाल से मुक्त होकर छठे नियम में बताए उद्देश्य को, समझकर प्राप्त कर सकेगा। जो चुनौतियाँ गत दो आम चुनावों से सामने दिखाई दे रही है, दयानन्द और आर्यसमाज के पास ही इनका हल है। संघ परिवार ने अपने कर्तव्य का निर्वहन कर लिया, अब बारी आर्यसमाज की है। संघ की हजारों शाखाएँ आर्यसमाजों में चलती है। संघ के हजारों लोग आर्यसमाजों में पदधारी होकर संघ के उद्देश्यों को सींच रहे हैं। अब उनकी बारी है कृतज्ञता प्रकट करते हुए आर्य बनने की। अब बारी है संघ को आर्यसमाज में बदलने की। संघ ने हिन्दुओं को भय दिखाकर घेरा है। हथियार उसके पास कॉच के बने हैं, जो रणभूमि में काम के नहीं है। दयानन्द ने हिन्दुओं को वज्र दिए हैं। इसीलिए आर्यसमाज को वीर सावरकर ने हिन्दुओं की वीरभुजा कहा था। दुःख है कि संघ ने दयानन्द के डेरों पर शाखाएँ लगाकर हिन्दुओं को डराकर पुकारा। एक किया, किन्तु वह दयानन्द के वज्र से डरता है, क्योंकि उसे हाथ में लेने के लिए स्वयं का परिष्करण करना पड़ता है, जिसे संघ अपने परिचय का लोप मानता है। परिष्करण कभी लोप नहीं होता। यह समझकर, कृतज्ञ होकर, अब संघ को दयानन्द की सेना बनने की दरकार है। वरना कुछ भी हाथ नहीं आयेगा। आर्यो! सिर्फ जागो ही नही, दौड़ों। घर, मोह, धन और आलस छोड़ों। वोट तो दे दिया, तन, मन, धन और समय कौन देगा? भारत की अस्मिता कोई छोटा प्रश्न नहीं है, इसलिए इस बिन्दु को इतना विस्तार मिला है।

५. राष्ट्रवाद मुख्य मुद्दा है किन्तु जनता ने अन्य मुद्दों को कूड़ेदान में नहीं डाला है: चुनावों में प्रचंड बहुमत प्राप्त कर सत्ता में आई भाजपा को यह भूलना नहीं चाहिए कि राष्ट्रवाद का नाम लेने मात्र से आम जनता का पेट नहीं भरता। राष्ट्रीय सत्ता का महत्व समझकर और विपक्ष को तोलकर, उसे अक्षम जानकर, जनता ने राष्ट्र का नेतृत्व प्रचंड बहुमत से भाजपा को सौंपने के कुछ माह पूर्व, कुछ राज्यों से उसे उखाड़ा भी है। किंतु भाजपा इसका तात्पर्य यह नहीं निकाले कि राष्ट्रवाद का नारा देकर, सीमाओं को सुरक्षित करने की बात कहकर, सेनाओं को सिद्ध करके, आतंकवाद के विरुद्ध प्रभावी कार्यवाही करके जनता की मूलभूत आवश्यकताओं सुविधाओं और सेवाओं को दरकिनार किया जा सकता है। भाजपा की जिम्मेदारी है कि वह महत्वपूर्ण राष्ट्रीय मसलों पर सुढ़ता का रुख अपनाते हुए जनता की मूलभूत आवश्यकताओं की उपेक्षा न कर उनपर भी पूर्ण दायित्व के साथ कार्य करे। जनता का लाखों करोड़ रुपया जिम्मेवारी निर्धारित कर अपराधियों को दण्ड दिए बिना बैंक डूबतखाते में नहीं डाल सकते। अच्छे उद्देश्य को सामने रखकर लागू की गई नोटबंदी को वांछित परिणाम प्राप्त करने से वंचित करने वाले एक भी बैंक या बैंककर्मी को दण्ड नहीं देना कोई दुरभिसंधि ही कही जाएगी। भारत में करामद बढ़ने के बाद भी धरातल पर जनता को राहत नहीं है। आँकड़ों में दिखायी राहत को सैकड़ों लोग नियोजित करके और करोड़ों रुपयों के विज्ञापन द्वारा धरातल पर दिखाने के प्रयास असफलता अधिक दर्शाते हैं। इन कमियों को मुझसे अधिक सत्ता जानती है। फिर भी यदि भाजपा जनता की अपेक्षाओं और आकांक्षाओं के साथ साथ उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति करने में असफल रही तो भारत का भविष्य अंधकार में होगा। क्योंकि कांग्रेसनीत यूपीए और तृणमूल कांग्रेस जैसे दलों द्वारा राष्ट्रीय अस्मिता की उपेक्षा धर्मनिरपेक्षता, अनेकता में एकता एवं

तुष्टीकरण के नाम पर जारी है। हिन्दुओं को भयभीत कर वोट के लिए एक कर दिया है, किन्तु वोटों की यह एकता हिंदुओं के दैनिक, त्यौंहारी, धार्मिक और सामाजिक परिवेश में एकता में नहीं बदलती है, समरसता नहीं आती है और भयमात्र से हुए इस एकीकरण को धरातल पर एकीकरण में न बदला तो आने वाले दशक भयानक होंगे।

६. **श्री राम और श्री कृष्ण के आर्यत्व को अंगीकार करने की चुनौती:** २०१४ में मोदी सरकार के आने के बाद संघ परिवार ने जोरशोर से घर वापसी कार्यक्रम की मुनादी की थी। लेकिन अब वह स्वर सुनाई नहीं देता। आचार्य वेदप्रियजी शास्त्री से दशकों पहले सुना था कि संघ परिवार कई मामलों में कमजोर है। उनके समरसता कार्यक्रमों में कभी दो अलग अलग शामियाने लगा करते थे। जब शामियाना एक होने लगा तो समरसता कार्यक्रम ही समाप्त हो गए। ये लोग पुरखों का वास्ता देकर विधर्मी को हिंदू बनने को आमंत्रित तो कर सकते हैं। किंतु हिंदू में क्या बनाएंगे–यह उनके हाथ में नहीं है। हिंदुओं में हिंदुत्व के आधार पर रोटी बेटी का संबंध नहीं होता। हिंदुओं में जातपाँत और परंपरा बन चुकी जड़ता के आधार पर ही रोटी बेटी का संबंध होता है। अन्यथा खून खच्चर हो जाते हैं। अतः जिस जन्मना जातिवादी, अन्यायी, पीड़क हिन्दुत्व से तंग होकर भी लोग विधर्मी बने, उन्हीं पीड़क कुरीतियों के रहते हिन्दुत्व वापस क्यों स्वीकारेंगे? इस चुनौती को हिंदुत्व के झंडाबरदार कैसे स्वीकार और परास्त करते हैं–इसी पर समय तय करेगा कि इस देश की मौलिक असिमता और संस्कृति उभर कर आती है या आयातित संस्तियॉ इस देश को लीलती है!

७. **ध्रवीकरण का बदला स्वरूप:** इन चुनावों में संप्रदायिक आधार पर वोटों का ध्रुवीकरण हुआ। ध्रुवीकरण तो राजनैतिक दलों द्वारा निरंतर किया जाता रहा है। स्वातंत्र्योत्तर काल में यह ध्रुवीकरण कांग्रेस द्वारा मुस्लिम मतों को अपनी ओर रखने के लिए किया जाता था। हिंदू संगठनों ने स्वतंत्रता आंदोलन में हिस्सेदारी नहीं की थी। आर्यसमाजियों ने की थी किन्तु हिन्दुओं ने उनका तिरस्कार किया और सत्तालोलुप आर्यसमाजी रहे नहीं। खैर स्वतंत्रता बाद लंबे समय तक हिन्दू संगठनों को भारत की राजनीति में वांछित स्थान नहीं मिला। अतः लंबे समय तक हिंदु मतों के ध्रुवीकरण के स्थान पर विभाजन होता रहा है या हिंदू चुनावों में उदासीन रहा है। इस बार हिंदुओं का पूर्ण ध्रुवीकरण हुआ और भाजपा के पक्ष में हुआ। यद्यपि शासन द्वारा यह प्रचार किया गया है कि जहॉ–जहॉ मुस्लिम आबादी अधिक थी, वहॉ वहॉ भाजपा को अधिक वोट मिले। मतदान गुप्त होता है अतः यह नहीं बताया जा सकता कि भाजपा को मुस्लिमों ने कितने वोट दिए और हिंदुओं ने कितने! लेकिन यह समझने की बात है कि मुस्लिम आबादी अधिक होने के साथ–साथ हिंदुओं का ध्रुवीकरण भी सुनिश्चित हुआ। क्योंकि जैसे जैसे मुस्लिम बहुलता बढ़ती जाती है, उनका वैमनस्य अन्य संप्रदायों या कि भारत में हिंदुओं के विरुद्ध बढ़ता जाता है–जो हिंदू ध्रुवीकरण में सहायक हुआ है। यही कारण हैं कि मुस्लिमों की बढ़ती आबादी के साथ भाजपा को अधिक मत मिले।

८. **निर्बल और विकल्प देने में अक्षम विपक्ष:** आजादी के बाद दो बार संवेदना के आधार पर मिले बहुमत को छोड़ें, तो कांग्रेस एक निरंतर पतनशील पार्टी है। कांग्रेस को यह भ्रम रहा है क्रि मुस्लिम उनकी वोट बैंक है। जबकि ऐतिहासिक सच्चाई यह है कि गांधीजी के खिलाफत

आंदोलन में भी मुस्लिमों का योगदान अत्यल्प रहा था। फिर भी यदि मुस्लिम कांग्रेस की वोट बैंक होते तो पाकिस्तान में कांग्रेस का राज होता और सीमांत गांधी खान अब्दुल गफ्फार खान को उपेक्षा नहीं भोगनी पड़ती। जिस दिन कहीं पर भी मुसलमान अपने दम पर सत्ता या सत्ता के प्रतिनिधि चुनने में समर्थ हो जाते हैं उस समय इस्लामी कट्टरपंथियों के अलावा कोई भी सत्ता में नहीं आते। कांग्रेस के दिमाग में यह बात नहीं आई और वह पतन को प्राप्त होती गई और अपने इस रुख के रहते वह नष्ट भी होगी।

६. **प्रतिकिया उभरी है, सृजनात्मक रुख देने की आवश्यकता है:** भारत में मतों का ध्रुवीकरण सांप्रदायिक आधार पर होता रहा है, इसमें कोई दो राय नहीं है। संप्रदाय हमेशा असहिष्णुता का ही परिणाम होता है। अब तक सिर्फ ईसाई या मुसलमान ही असहिष्णुता प्रदर्शित करते रहे हैं। किंतु सदियों से नौंचा जाता रहा हिन्दू दो चुनावों में अपने अस्तित्व के प्रति जागृत हुआ है। यह वस्तुतः असहिष्णुता तो नहीं है। हॉ! असहिष्णुता की प्रतिक्रिया अवश्य है। क्रिया और प्रतिक्रिया दोनों संघर्ष के आरंभ की सूचना है। इस संघर्ष के लिए हिंदू समाज को अपने आपको तैयार करना पड़ेगा। यह विशेष ध्यान देने वाली देने की बात है कि हिंसा हल नहीं होगा और सांप्रदायिक लोग जड़ता में डूबे होते हैं। तो हल कैसे निकाला जाए? प्रतिकिया जो जन्म देने वाली कियाओं को रोका जा सकता है?यदि नही तो क्या सिर्फ प्रतिकिया को सृजनात्मक बनाने से काम चल जाएगा? दण्ड का उपाय कब काम में लिया जाता है। दण्ड को लागू करना सत्ता का काम है। अतः सृजन के लिए सत्ता दण्ड का प्रयोग करे, दण्डप्रयोग असम्भव होने से पहले!

—कमल

नगर आर्यसमाज, गुलाब सागर, जोधपुर के नवनिर्वाचन

आर्यसमाज जालोरियों के बास के मंत्री एवं निर्वाचन अधिकारी श्री श्याम आर्य, द्वारा सम्पन्न कराए। नगर आर्यसमाज, गुलाब सागर, जोधपुर के नवनिर्वाचन में सर्वसम्मति से नवनिर्वाचित कार्यकारिणी इस प्रकार हैः—

1. प्रधान : —श्री बुद्धिप्रकाश आर्य। 2. उपप्रधान : —श्री वीरेन्द्रकुमार शर्मा।
3. मंत्री : —श्री रामेश्वर जसमतिया। 4. उपमंत्री : —कमल किशोर आर्य।
5. कोषाध्यक्ष : —श्री यशपाल आर्य। 6. प्रचारमंत्री : —श्री ज्ञानसिंह आर्य।
7. पुस्तकाध्यक्ष : —श्री सुशीलजी मिश्रा। 8. व्यवस्थापक : —श्री घनश्याम राखेचा।
9. वरिष्ठ दलपतिः — श्री घनश्यामसिंह तॅवर, दलपति श्री शैतानसिंह

अंतरंग सदस्यः —

1. श्री सूर्यप्रकाशजी टाक। 2. श्री घनश्याम जी राखेचा
3. श्रीमती शान्तिदेवी जी आर्या। 4. श्रीमती चन्द्रा जी जसमतिया
5. श्री गजेन्द्र सिंह शोभावत

समाज की नवगठित कार्यकारिणी द्वारा निर्वाचन अधिकारी श्री श्याम आर्य का शान्तिपूर्ण सर्वसम्मत निर्वाचन कराने हेतु धन्यवाद किया गया।

स्तुति-विषय

किꣳ स्विदासीदधिष्ठानमारम्भणं कतमत्स्वित्कथासीत् ।
यतो भूमिं जनयन्विश्वकर्मा वि द्यामौर्णोन्महिना विश्वचक्षाः ।।३२।। -यजु. १७।१८

व्याख्यानः (प्रश्नोत्तरविद्या से) इस संसार का **"अधिष्ठानं किं स्वित्"** अधिष्ठान क्या है ? **"आरम्भणम्"** कारण और उत्पादक कौन है ? **"कतमत्स्वित्कथा आसीत्"** किस प्रकार से है तथा रचना करने वाले ईश्वर का अधिष्ठानादि क्या है तथा निमित्तकारण और साधन-जगत् वा ईश्वर के क्या हैं ? (उत्तर) **"यतः"** जिसका विश्व (जगत् कर्म) किया हुआ है, उस **"विश्वकर्मा"** परमात्मा ने अनन्त स्वसामर्थ्य से **"भूमिं जनयन्"** इस जगत् को रचा है हैं । वही इस सब जगत् का अधिष्ठान, निमित्त और साधनादि है, उसने **"महिना"** अपने अनन्त स्वसामर्थ्य से इस सब जीवादि जगत् को यथायोग्य रचा और भूमि से लेके **"द्याम्"** स्वर्गपर्यन्त रचके स्वमहिमा से उसे **"और्णोत्"** आच्छादित कर रक्खा है और परमात्मा का अधिष्ठानादि परमात्मा ही है, अन्य कोई नहीं, सबका उत्पादन, रक्षण, धारणादि भी वही करता है तथा आनन्दमय है और वह ईश्वर कैसा है ? [उत्तर यह है] कि **"विश्वचक्षाः"** वह सब संसार का द्रष्टा है, उसको छोड़के जो अन्य का आश्रय करता है, वह दु:खसागर में क्यों न डूबेगा ? ।।३२ ।।

प्रार्थना-विषय

तनूपाऽ अग्नेऽसि तन्वं मे पाह्यायुर्दाऽ अग्नेऽस्यायुर्मे देहि ।
वर्चोदाऽ अग्नेऽसि वर्चो मे देहि । अग्ने यन्मे तन्वाऽ ऊनं तन्मऽआपृण ।।३३।। -यजु. ३।१७

व्याख्यान-हे **"अग्ने"** सर्वरक्षकेश्वराग्ने ! तू **"तनूपा असि"** हमारे शरीर का रक्षक है । सो **"मे तन्वं पाहि"** मेरे शरीर का कृपा से पालन कर, हे महावैद्य ! आप **"आयुर्दा असि"** आयु (उम्र) बढ़ानेवाले तथा रक्षक हो, **"मे"** मुझको सुखरूप **"आयुः धेहि"** उत्तमायु दीजिए । हे अनन्त विद्यातेजयुक्त ! आप **"वर्चः "** विद्यादि तेज, अर्थात् यथार्थ विज्ञान देनेवाले हो, **"वर्च मे देहि"** मुझको सर्वोत्कृष्ट विद्यादि तेज देओ । पूर्वोक्त शरीरादि की रक्षा से हमको सदा आनन्द में रक्खो और **"अग्ने यत् मे तन्वा"** सर्वोन्नति साधक प्रभो ! जो-जो कुछ भी मेरे शरीरादि में **"ऊनम्"** न्यूनता हो, **"तत्"** उस-उस **"मे"** मेरी न्यूनता को आप कृपादृष्टि से सुख और ऐश्वर्य के साथ सब प्रकार से **"आपृण"** पूर्ण करो । किसी आनन्द वा श्रेष्ठ पदार्थ की न्यूनता हमको न रहे । आपके पुत्र हम लोग जब पूर्णानन्द में रहेंगे तभी आप पिता की शोभा है, क्योंकि लड़के-लोग छोटी-बड़ी चीज़ अथवा सुख पिता-माता को छोड़ किससे माँगे ? सो आप सर्वशक्तिमान् हमारे पिता, सब ऐश्वर्य तथा सुख देनेवालों में पूर्ण हो ।।३३।। ***—आर्याभिविनय से***

वेद-वचन

वैर-त्याग, मित्र-भाव

विश्वा उत त्वया वयं धारा उदन्या इव ।
अति गाहेमहि द्विषः ।। — ऋग्. २।७।३

पदार्थः- हे विद्वन् ! जैसे **(त्वया)** आप्त विद्वान् जो आप, उनके साथ वर्त्तमान हम लोग **(धाराः उदन्या इव)** जल की धाराओं को जैसे, वैसे **(विश्वाः)** समस्त **(द्विषः)** वैर-वृत्तियों को **(अति, गाहेमहि)** अवगाहें, विलोड़ें मथें, वैसे आप **(उत)** भी इनको गाहो ।

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलंकार है । जैसे जल की धारा प्राप्त हुए स्थान को छोड़ दूसरे स्थान को जाती है, वैसे शत्रुभाव को छोड़ मित्रभाव को सब मनुष्य प्राप्त होवें ।

नारी गौरव

मूर्द्धासि राड् ध्रुवासि धरुणा धर्त्र्यसि धरणी ।
आयुषे त्वा वर्चसे त्वा कृष्यै त्वा क्षेमाय त्वा ।। —यजु. १४।२१।।

पदार्थ :- हे स्त्रि ! जो तू सूर्य के तुल्य **(मूर्द्धा)** उत्तम **(असि)** है, **(राट्)** प्रकाशमान् (ध्रुवा) निश्चल, शुद्ध **(असि)** है, **(धरुणा)** पुष्टि करने हारी **(धरणी)** आधाररूप पृथिवी के तुल्य **(धर्त्री)** धारण करने हारी **(असि)** है, उस **(त्वा)** तुझे **(आयुषे)** जीवन के लिए उस **(त्वा)** तुझे **(वर्चसे)** अन्न के लिए उस **(त्वा)** तुझे **(कृष्यै)** खेती होने के लिए और उस **(त्वा)** तुझको **(क्षेमाय)** रक्षा होने के लिए मैं सब ओर से ग्रहण करता हूँ ।

भावार्थः- जैसेउत्तमाङ्ग शिर से सबका जीवन, राज्य से लक्ष्मी, खेती से अन्नादि पदार्थ और निवास से रक्षा होती है, इसी प्रकार सबकी आधारभूत, माता के तुल्य मान्य करनेहारी पृथिवी है, वैसे ही विद्वान् स्त्री को होना चाहिए ।

तुझे कभी न त्यागें

महे च न त्वाद्रिवः परा शुल्काय दीयसे ।
न सहस्राय नायुताय वज्रिवो न शताय शतामघ । — ।२९१।। साम. ३।१।६।९।।

पदार्थः- **(अद्रिवः)** हे मेघों के धारक ! **(वज्रिवः)** दुष्टों के ताड़नकर्त्ता ! **(शतामघ)** बहुत धनवाले ! इन्द्र ! परमेश्वर ! **(त्वा)** आप हमसे **(महे)** बड़े **(शुल्काय)** मूल्य के लिए **(च)** भी **(न)** नहीं **(परा, दीयसे)** त्यागे जाते हैं । **(न सहस्राय)** न हजारों के लिए **(न, अयुताय)** न लाखों की लक्ष्मी के लिए **(न, शताय)** और न इससे भी अधिक के लिए ।

भावार्थ :- मनुष्य को चाहिए कि अपार धन और ऐश्वर्य के लिए भी कभी परमेश्वर को न भूलें । सहस्रादि अनन्त धन जाए, परन्तु परमेश्वर की आज्ञा के विपरीत कुछ न करें ।क्योंकि सज्जनों को अनन्द प्रदान करने वाला वह परमात्मा अधर्मियों के लिए दण्डदाता वज्रधारी है। अत: धन, विलास, कुटुम्ब और जीवन बचाने के लिए भी हम परमात्मा को न छोड़े ।

मैं यशस्वी होऊँ

यशा इन्द्रो यशा अग्निर्यशाः सोमो अजायत ।

यशा विश्वस्य भूतस्याहमस्मि यशस्तमः ।। –अथर्व. -६ ।३९ ।३ ।।

पदार्थः- **(इन्द्रः)** सूर्य **(यशाः)** यशवाला **(अग्निः)** अग्नि **(यशाः)** यशवाला और **(सोमः)** चन्द्रमा **(यशाः)** यशवाला **(अजायत)** हुआ है । **(यशाः)** चाहनेवाला **(अहम्)** मैं **(विश्वस्य)** सब (भूतस्य) संसार के बीच **(यशस्तमः)** अति यशस्वी **(अस्मि)** हूँ ।

भावार्थः-हम सूर्य के तेज से , अग्नि की ज्या ऊपर की ओर ही लपक कर जाने के गुण से और चन्द्रमा की शीतल सुखदायी ज्योत्सना से प्रेरणा लेकर तेजस्वी , उर्ध्वगामी, उन्नतिगामी, उन्नतिशील और सभी को सुख देने वाले सौम्य परोपकारी बनें।

लेखकों से निवेदन

इस पत्रिका का उद्देश्य महर्षि मिशन को प्रचारित-प्रसारित करना हैं। आर्य जगत के चिंतकों और लेखकों से निवेदन है कि ऋषि मिशन की पूर्ति में सहयोग हेतु अपनी रचनाओं को प्रकाशनार्थ भिजवाएं । रचनाएँ महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मृति भवन न्यास के पते पर या sampadakmdsprakash@gmail.com **के पते पर ईमेल से भी भेजी जा सकती हैं ।** **–संपादक**

बल के उत्सवों में

तमप्सन्त शवस उत्सवेषु, नरो नरमवसे तं धनाय ।

सो अन्धे चित् तमसि ज्योतिर्विदत्, मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ।। ऋग् १.१००.८

ऋषय: वार्षागिरा: ऋज्राश्व-अम्बरीष-सहदेव-भयमान-सुराधस: । देवता **इन्द्र:** । छन्द: **त्रिष्टुप** ।

(नर:) पुरुषार्थी मनुष्य **(शवस:)** बल के **(उत्सवेषु)** उत्सवों में **(त)** उस **(नर)** नेता को **(अवसे)** रक्षण के लिए **(अप्सन्त)** प्राप्त करते हैं, **(त)** उसे **(धनाय)** ऐश्वर्य के लिए [प्राप्त करते हैं] । **(स:)** वह **(अन्धे चित्)** अन्धे भी **(तमसि)** अन्धकार में **(ज्योति:)** ज्योति **(विदत्)** प्राप्त करा देता है । [वह] **(मरुत्वान्)** प्राणवान् **(इन्द्र:)** परमात्मा **(न:)** हमारी **(ऊती)** रक्षा के लिए **(भवतु)** हो ।

क्षत्रियों के लिए संग्राम बल के उत्सव होते हैं, क्योंकि उनमें उन्हें अपने बल का जौहर दर्शाने का सुअवसर प्राप्त होता है । जब-जब संसार में अधर्म की व्याप्ति और धर्म की ग्लानि हो जाती है, अधार्मिक लोग अपना राज्य-विस्तार करने में संलग्न हो जाते हैं, तब-तब वीर क्षत्रिय लोग धर्म की रक्षा के लिए संग्राम का बिगुल बजाते हैं, बल के उत्सावों का आयोजन करते हैं । परमेश्वर स्वयं अधर्म के नाश और धर्म की रक्षा के लिए कटिबद्ध हैं, अत: वीरजन अधर्म-संहार के संग्रामों में उन्हीं परमेश्वर को अपना नेता बनाते हैं और रक्षण के लिए उन्हीं का आह्वान करते हैं । जो ऐश्वर्य धार्मिक जनों से छीनकर अधार्मिक शत्रु ने हस्तगत कर रखे होते हैं, उन्हें वापिस दिलाने के लिए वे उन्हीं परमप्रभु की शरण में जाते हैं । नि:सन्देह प्रभु उन्हें बल के उत्सवों में विजय दिलाते हैं और विपुल ऐश्वर्य प्राप्त कराते हैं । ऐसे ही संग्राम हमारे हृदय में भी चलते हैं । वहाँ भी आसुरी और दैवी सेना में कड़ा मुकाबला होता है और विजय प्राप्ति के लिए बड़े तीव्र बल-प्रदर्शन की आवश्यकता होती है । तब भी स्मरण किये जाने पर प्रभु रक्षा करते हैं और दिव्य ऐश्वर्यों को प्राप्त कराते हैं ।

इन्द्र-प्रभु अन्धे घुप्प अन्धकार में भी ज्योति प्राप्त कराने वाले हैं । जब मन में ऐसी विकट तामसिकता छा जाती है कि कर्तव्य की दिशा सर्वथा आँखों से ओझल प्रतीत होने लगती है, उस समय भी प्रभु ज्योति की रेखा प्रकट करके दिशा-प्रदर्शक बनते हैं । इन्द्रप्रभु 'मरुत्वान्' हैं, प्राणवान् हैं, समर्थ है, भक्त की रक्षा के लिए उत्साहवान् हैं , जागरूक हैं । उन्हीं से हमारी विनय है कि जब-जब हम पर संकट के बादल मंडरायें, हमारी नाव मँझधार में डूबने लगे, हम पर विपत्तियों का पहाड़ आ पड़े, हम असहाय हो जायें, तब-तब वे आकर हमारी रक्षा करें, हमें अपनी शरण में लें, विपदा से हमारा उद्धार करें, और हमें पैरों पर खड़ा कर दें । हे इन्द्र प्रभु ! तुम हमारी प्रार्थना को सुनो, हम असहायों के सहायक बनकर रक्षा के लिए दौड़ो, और रक्षा का वरदान देकर हमें सदा के लिए निश्चिन्त कर दो ।

-डॉ. रामनाथ वेदालंकार प्रणीत 'वेदमञ्जरी' से

ऋषिगाथा

— विमल चन्द्र शर्मा 'विमलेश'

(गतांक में अपने पढ़ा कुंभ के मेले में धर्मयोद्धा महर्षि द्वारा फहराई पाखण्डखण्डिनी ध्वजा और सर्वस्वत्याग। इस अंक में आप देखेंगे वैदिक रश्मियों से गंगा तटस्थ धरा को प्रकाशित करते वेदोद्धारक महर्षि को)

आर्य देश ! तू धन्य

ऋषिवर तज कर हरिद्वार कुम्भ, ऋषिकेश धाम में आ पहुँचे ।
तन पर यौवन की दिव्य कांति, मस्तक पर सुरभित रेणु रचे ।।१।।

ऋषिकेश जहाँ गंगाजल, कल-कल करता बहता है प्रतिपल ।
मनमें जलनिधि से मिलन कामना, बिखराती लहरें चंचल ।।२।।

कनखल जा पहुँचा दयानन्द, जनप्राम लंढ़ौरा था समीप ।
वासर त्रय से भूखा रमता, भारत भू: पर वैदिक महीप ।।३।।

ओ दयानन्द ! रुक जाना मत, तू भूखा हो, तेरा तन मन ।
प्रतिपल पथ पर बढ़ते रहना, गाते जाना वैदिक गायन ।।४ ।।

यह पथ निर्मम असिधारा सा, इस पर तुमको चलना होगा ।
कोमल मानव ! जग की घातक, विपदाओं से लड़ना होगा ।।५।।

भूखा प्यासा भीषण पथ पर, भावों सा बढ़ता जाता था ।
देखा जग ने ऋषि शुक्रताल, मीरापुर गाँव सुहाता था ।।६।।

पथ कट जाता चलते-चलते, पीड़ा पाँवों पर पड़ जाती ।
उत्ताप ताप मय भूख प्यास की, तुङ्ग भित्ति भी ढह जाती ।।७।।

शास्त्रार्थ विवेचन हुआ मुहम्मद्पुर ऋषि का आवास बना ।
लघु सुखकर तरुवर पीपल के, अंचल में स्वामि-निवास बना ।।८।।

तरुवर के रोम-रोम पल्लव, स्वामी पर पवन डुलाते थे ।
सम्पत्ति वालो ! पर हित साधो, मानव को मनु बतलाते थे ।।९।।

ऊपर नभचर कहते स्वामिन्, है केवल जगदीश्वर संबल ।
तुमको, हमको, कृमि कीटों को, वह देता भोजन छादन जल ।।१०।।

चल दिया परीक्षितगढ़ (मेरठमंडल) गंढ़मुक्तेश्वर आया ।
कोई क्यों पूछे भला:- अरे, तू ने भी कुछ भोजन पाया ।।११।।

तू भूखा, भोजन कहाँ, तुझे, अपना कर्तव्य निभाना है ।

जगती जीवन का भग्न पोत, खेवट ! तट पर ले जाना है ।।१२।।
योंही बीते दिन तीन, भूख ने कंपित अचल फैलाया ।
क्या देता स्वामी रिक्त साथ, चलता गंगातट पर आया ।।१३।।
मर्यादा पालक राम ! तुम्हें, अपनी वैदेही प्यारी थी ।
ओ दयानन्द ! तब माँ वैदेही, भारत की हर नारी थीं ।।१४।।
श्रीराम ! अंगिनी के वियोग में, तुम वन-वन ठुकराते थे ।
पर दयानन्द तुम कितनी सीताओं को मुक्ति दिलाते थे ।।१५।।
भगवान राम ! तू ने भीलन के, झूठे बेरों को खाया ।
ओ दयानन्द तू ! भी जग की, बाधाओं में कब घबराया ।।१६।।
थे समीप ही दो मांझी, गङ्गा जल पर नाव चलाते थे ।
उनकी सूखी आधी रोटी, भगवान दयानन्द खाते थे ।।१७।।
स्वामिन् ! केवल बढ़ना, लड़ना, तापों से सीखा था तुमने ।
निर्मोही घातक चट्टानों पर, चढ़ना सीखा था तुमने ।।१८।।
तज गढ़मुक्तेश्वर चल दिये, फरुर्खाबाद झुकाते सभी माथ !
अनुगत बन, मन मुदिता भरकर, ले गये इन्हें घर जगन्नाथ ।। १९।।
विचरण करते झोंखे से स्वामी, आये धाम अनूपशहर ।
कर मुदिता से गठबन्धन, परिचय पाकर गौरी शंकर ।।२०।।
हर नगर, डगर हर घर-घर में, तू वैदिक ज्योति जगाता चल ।
हो स्नेह धार अथवा विष, विपदा झोंखों में मुस्कराता चल ।।२१।।
तजकर दिनकर सम दिवस प्रीति, शुभ सतीमढ़ी पथ पर आया ।
बलयश पूरित तन नवलजंग, ऋषि दर्शन पाकर हर्षाया।।२२।।
होगी कोई अबला, सबला, पति प्रीता, प्राणेश्वर त्यक्ता ।
यह बनी उसी की शुभ समाधि, जो भक्तिरता, तप संयुक्ता ।।२३।।
था नवलजङ्ग भुज, दंड, चंड सा, वक्षःस्थल पूरित यौवन ।
स्नेही, सुशील, सत्आचारी, नव नूतन बल विकसित तनमन ।।२४।।
सुकुमार गात कौमार्य वस्त्र, पहिने अनुजा भोली भाली ।
दो सुमन सदा विकसे रहते, थी सतीमढ़ी पावन डाली ।।२५।।
गंगा की चंचल लहरों पर, खेला करते भगिनी भ्राता ।
यह युगल मरालों सा, गंगा की वर धारा को तरजाता ।।२६।।
रच दी रमणीय पर्णशाला, पावन चरणों में आता था ।

गंगारज, चन्दन, नवलजङ्ग, ऋषि तन पर नित्य लगाता था ।।२७।।
था दिन संध्या पट में लिपटे, ऋषिराज समाधि लगाते थे ।
पशुवत् पथपर कुछ वामी, मदिरा पीकर बकते आते थे ।।२८।।
झपटा उनके ऊपर प्रहार करने, सुबाहुवर नवलजंग ।
नौ दो ग्यारह हो गये, यथा, माँझे से कट गिरती पतंग ।।२९।।
तज दी स्वामी ने सतीमढ़ी, आगे चल दिये बुलन्दशहर ।
चासी आये, निर्जन पथ पर, चलते-चलते कुछ बिता प्रहर ।।३०।।
आये स्वामी श्री नन्दराम, भूले चंक्रांकित मत मंडन ।
अज्ञान कभी घर कर सकता ? बहती हो निर्मल ज्ञान पवन ।।३१।।
चल दिये थारपुर ग्राम स्वामिवर, चलते रामघाट आये ।
भक्तों ने ज्ञान लिया, स्वामी ने, टीकाराम शिष्य पाये ।।३२।।
आदान, दान से ही जग की, व्यवहार तरी तट पर आती ।
आ जाते मन दूषण प्रवाह, चकराती भंवरों में जाती ।।३३।।
तज राजघाट ऋषिराज चरण, थे कर्णवास जनपद ऊपर।
आषाढ़ मास मुस्काता था, मन में वर्षा का नाम सुमर ।।३४।।
श्री पंडित अम्बादत्त पर्वती, विविध शास्त्र ज्ञाता सुजान ।
पाषाण अर्चना त्याज्य,कहा, सुनकर स्वामीवर के प्रमाण ।।३५।।
तज कर्णवास स्वामी अहार, जन पद अभिराम पधार गये ।
भक्तों के ज्ञान विहङ्गम ने तज, बन्धन पंख-पसार दिये ।।३६।।
ऋषिचरण चक्र चलते पथ पर, हौले हौले चासी आये ।
बासी,सूखी रोटी खाई, खंडन मंडन गायन गाये ।।३७।।
था चैत्र स्वामि ने चासी तजकर, रामघाट विश्राम लिया।
चल दिये पथिक से कर्णवास, में भक्तों ने सम्मान किया ।।३८।।
बैलोन पधारे स्वामि यहाँ, भी वर्षाते अमृत वर्षा ।
अनगिनती मन उलूक रोते, कितनों का हृदय पद्म हर्षा ।।३९।।
ऋषि पुन: पधारे कर्णवास, कारण अज्ञान मिटाना था ।
शास्त्रार्थ द्वन्द झोखों में भी, वैदिक पादप विकसाना था ।।४०।।
आ गया शीत विकसित यौवन सा, कितने मानव मुस्कराते ।
कंबल कितनों ने ओढ़ लिये, कुछ सर्दी में ठिरते जाते ।।४१।।
अब भी कितने तन भार लिये, खा पीकर स्वेद बहाते थे ।

अपने पन पर इठलाते थे, महलों में रात बुलाते थे ।।४२।।
वह आन अनोखी छान यहाँ, भी तो हैं कुछ मानव बसते ।
केवल तन शीत मिटाने को, पावक ज्वालाओं पर रहते ।।४३।।
कुछ गुदड़ी उधड़ी लिये, किन्हीं सुन्दर शाल दुशाले थे ।
सर्दी में शीत पिये कोई नर, कहीं पर छलकते प्याले थे ।।४४।।
धनवान हवेली में निर्धन, कुटिया में रात बिताता था ।
पक्षी नीड़ों में, रेती पर, पर यह ऋषिराज सुहाता था ।।४५।।
ऊपर नभ था नीचे रेती, शीतल ज्वालाओं से सिकती।
दायें बायें था सन्नाटा, मलयानिल सर्दी से कंपती।।४६।।
थी एक ओर भीषण सर्दी, स्वामी बैठा था एक ओर।
जग की चिन्ताएँ एक ओर, यह एक रमा विभु में विभोर।।
था गंगा तट चन्द्रिका सजीली, हर्षित तन दिखलाती थी।
शीतल श्रद्धा के फूल लिये, ऋषि सन्मुख बढ़ती आती थी।।१८।।
स्वामी बैठा शंकर बनकर, निर्दोष कौमुदी आती है?
यह पगली भइया दूज जान, भाई का भाल रचाती है।।४९।।
कितनी पावन थी वह राका, बहता था कल कल गंगाजल।
यह दृश्य देख शर्वरिभर्ता, नभ में खिलता था पल-प्रतिपल ।।५०।।
इस अवसर पर दो गौर रंग, यूरोप भाग के आ पहुँचे।
ऋषि थे समाधि में लीन जहाँ, दोनों ही उस पथ पर पहुँचे।।५१।।
था एक जिलाधिप नगर बदायूं, का दूजा था एक मित्र।
देखा, विस्मित हो गये कहा- यह कौन रमा योगी विचित्र।।५२।।
क्या यह शंकर? जिसको कुछ जन, कैलाश धाम बतलाते हैं।
क्या यह भगवान्? कभी आकर, जग को दर्शन दे जाते हैं।।५३।।
ऋषि के समाधि सर में प्रशान्त, अरविन्द नेत्र दोनों विकसे।
विकसे ऋषि के लोचन मनमोहन, गौर भ्रमर उन पर सरसे ।।५४।।
बोले ऋषि, परिचय दिया, जान परिचय दोनों जन मुस्काये।
है धन्य-धन्य भारत भू: तूने, एसे योगी उपजाये।।५५।।
ओ आर्य देश! तू धन्य पुन:, जग का आचार्य कहायेगा।
पावन शिक्षा देगा भू:तल पर, विजय ध्वजा फहरायेगा।।५६।।

दयानंद कौन है

(सार्थक शिक्षा के शिरोमणि प्रणेता)

परमात्मा ने जिन प्राणियों को बनाया है उनमें से एक को छोड़कर कोई भी अन्य प्राणी परमात्मा की दी हुई व्यवस्था में परिवर्तन नहीं करता। अनायास या सायास वे जो भी करते हैं, वह उनका स्वभाव है और अपने उसी स्वभाव के फलस्वरूप परमात्मा प्रदत्त प्रातिक साधनों से वह अपनी शारीरिक सीमा में ही सब कुछ करता है, और वह जो भी करते हैं, वे प्रकृति के निश्चित चक्र का भाग होता है। केवल मनुष्य ही ऐसा प्राणी है जिसने परमात्मा की इस सृष्टि में निर्धारित चक्रों के बाहर जाकर परिवर्तन किए हैं। शारीरिक सीमाओं से परे भी परिवर्तन किए हैं। आज वह कृत्रिम तूफान ला सकता है, कृत्रिम वर्षा कर सकता है, पहाड़ों को उखाड़ सकता है। उसने जल, थल एवं आकाश–तीनों को लगभग वश में कर लिया है। ऐसा करने में उसने जिस साधन का प्रयोग किया है उसका नाम है बुद्धि।

मनुष्य सृष्टि का सर्वाधिक बुद्धिमान प्राणी है। क्योंकि परमात्मा प्रदत प्राकृतिक बुद्धि में वृद्धि ना सिर्फ अन्य जीवो की तरह अनुभव द्वारा, वरन् अथाह वृद्धि शिक्षा के द्वारा करता है। मनुष्य में शिक्षाप्राप्ति का साधन अधिक बुद्धिमान शिक्षाविद् मनुष्य या मनुष्य रचित कोई यंत्र हो सकता है। शिक्षा प्रवाह से एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को आगे चलती रहती है।

आज जो शिक्षा है वह मनुष्य को ज्ञान तो देती है किंतु उसके उपयोग की सही दिशा नहीं देती। इसलिए बंदूक का प्रयोग जहाँ सैनिक करता है, वहाँ डाकू भी करता है। तात्पर्य यह कि जो ज्ञान मनुष्य अर्जित करता है वह उसके मस्तिष्क में बैठ जाता है। मस्तिष्क को जो वृत्तियां नियंत्रित करती हैं, उन वृत्तियों में उदात्तता लाने के साधन यदि शिक्षण के साथ जुड़े हों तो ही प्राणीमात्र का कल्याण हो सकता है नान्यथा। संसार के अन्य प्राणियों के समान मनुष्य भी सदैव सुख चाहता है। इसीलिए उसने शिक्षा को भी सुख का साधन हमेशा से बनाना चाहा है। जिसने सुख का दायरा जितना रखा है, उसी को ध्यान में रखकर शिक्षा में उसकी प्राप्ति हेतु प्रयत्न किया है। बड़ी मान्यताओं के आधार पर भारत में मुख्यतः तीन वर्ग शिक्षाक्षेत्र में सक्रिय हैं।

पहला दायरा इस्लाम को मानने वालों का है, जो मदरसों और मस्जिदों के माध्यम से शिक्षा देता है। इनपर लगे ध्वनिविस्तारकों से आप इनकी हिदायतें सुन सकते हैं कि दुनियावी इल्म पर दीनी तालीम को तरज़ीह दी जानी चाहिए, क्योंकि आखिरत के दिन दुनियावी इल्म किसी काम का नही; उस दिन तो दीनी तालीम और उसपर चलने वालों को ही सुकून मिलेग! जागरुक पाठक प्रतिदिन दुनियाभर के समाचार देखते सुनते हैं। अतः इस शिक्षा के परिणाम और उसकी गुणवत्ता तथा परिणामी 'सुख' के बारे में मुझसे अधिक ही जानते होंगे।

दूसरा दायरा ईसाई चर्च के अधीन दी जाने वाली शिक्षा का है। बहुत से उदाहरण मिल जाएंगे, जब इन विद्यालयों में अपनी नैसर्गिक भाषा का प्रयोग करने पर विद्यार्थियों को दण्डित किया गया। आधुनिक शिक्षा का उच्चतम स्तर इन विद्यालयों में होते हुए भी इस धरा की नैसर्गिक धरोहर के प्रति असहिष्णुता भरी है। भारत के शासन में सर्वोच्च पदों पर बैठे लोग

सर्वाधिक इन्हीं विद्यालयों के उत्पाद हैं। शासन की संवेदनहीनता इस शिक्षा को प्रश्न गत करती है। इतना ही नहीं पूर्वांचल में आदिवासियों को छल और धन से विधर्मी बनाया। इन्हीं विद्यालयों के उत्पाद शेष भारत के गणमान्य लोगों को भी 'ब्लडी इण्डियन' बोलते हैं।

तीसरा दायरा हम सरकारी शिक्षण संस्थाओं का लेते हैं जिसके निकट भूत से आज तक की सर्वसुलभ शिक्षा पर विचार करते हैं। भाषा शिक्षण, गणित, सामान्य विज्ञान, सामाजिक ज्ञान आदि शिक्षा के संग्रह तो प्राथमिक शिक्षा से लागू रहे हैं। विशेष या रुचि अनुकूल ऐच्छिक ज्ञान छठवीं कक्षा से आरंभ होता था। १९७५–७६ व इसके पूर्व भी प्राथमिक शाला से निकलते ही उच्च प्राथमिक विद्यालय में प्रवेश के समय आपके समक्ष विकल्प होते थे–वाणिज्य या चित्रकला विषय चुनने का। उच्चप्राथमिक अर्थात आठवीं कक्षा उत्तीर्ण करने के बाद पुनः विकल्प होते थे कि आप विज्ञान वर्ग में जाएंगे या वाणिज्य में या कला में! साथ ही एक और विकल्प सामने होता था कि उद्योग विषय में काष्ठकला लेंगे या सिलाई। उच्च माध्यमिक याकि ग्यारहवीं कक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात विश्वविद्यालय में प्रवेश लेते समय आपके समक्ष पुनः बहुत से विकल्प खुले होते थे कि साइंस लेंगे, वाणिज्य लेंगे, कला लेंगे और इनमें भी बहुत से विभाजन और होते थे। ८0 के दशक के पूर्वार्ध में 'दस जमा दो जमा तीन' पद्धति लागू कर दी गई। अब दसवीं तक कोई भी वैकल्पिक विषय नहीं होते, तृतीय भाषा को छोड़कर। दसवीं पास करने के बाद अत्यधिक विकल्प खुले होते हैं और बारहवीं पास करने के बाद और भी ज्यादा विकल्प मिल जाते हैं। स्वतंत्र भारत में नेहरूकाल में शिक्षा जनवादियों या कि साम्यवादी विचारधारा के पोषकों के चिंतन का परिणाम थी। पश्चातवर्ती भारत में तो यह कांग्रेसी, हिन्दूवादी और तीसरे मोर्चे की विचारधाराओं के अनुसार सरकारों के परिवर्तन के साथ बदलती रहती है। फिर भी परिणाम पर अधिक असर नहीं होता। स्वतंत्र भारत में इस शिक्षा का महत्व आप इसी बात से समझ सकते हैं कि सरकारी अध्यापर, कारिन्दे, अधिकारी और राजनेता अपनी संतान को सरकारी विद्यालय में नहीं पढ़ाते। फिर अंग्रेजों के काल में आप इन सरकारी विद्यालयों की शिक्षा का उद्देश्य तो सिर्फ काले अंग्रेज के रूप में बाबू तैयार करना ही था। आगे बढ़ने से पहले थोड़ी सी चर्चा और...

मैं वार्ता करते हुए यदाकदा पूछता रहता हूँ कि आपने जो शिक्षा ली, उसकी आपके दैनिक जीवन में कितनी सार्थकता व उपयोगिता है? ६० प्रतिशत से अधिक लोग यही कहते हैं कि अपने जीवन का अमूल्य समय उन्होंने विशेष शिक्षा के अर्जन में लगाया, किंतु उसका प्रयोग जीवन में लगभग नहीं के बराबर होता है। इंजीनियरिंग और डॉक्टरी किए हुए लोग दुकानदारी कर रहे हैं; प्रशासनिक, लेखा एवं दूसरी सरकारी सेवाओं में जा रहे हैं; सिविल विषय में इंजीनियरिंग डिग्री और डिप्लोमा धारी लोग बेरोजगार बैठे हैं और कमठे पर १० साल कारीगर के रूप में काम करने के बाद अनपढ़ लोग भी ठेकेदार बने हुए हैं अर्थात् व्यवसायिक शिक्षा का कोई प्रयोग नही; विज्ञान और कला में शिक्षित लोग बैंक में कर्मचारी बन रहे है। ये कुछेक उदाहरण है। आज दी जा रही सामान्य एवं विशेष व्यावसायिक शिक्षा मनुष्य के दैनिक जीवन में या आजीविंका के लिए सर्वदा सहयोगी नहीं है और अर्जित शिक्षा तथा व्यवसाय में विषमता आम बात बन गई है।

यह तो मात्र व्यवसायिक शिक्षा एवं वास्तविक व्यवसाय में असंगति दिखाई है। अब मानवीय मूल्यों की बात करें तो क्या आज की शिक्षा मनुष्य को मानवीय मूल्यों को अपनाने की प्रेरणा देती है? विख्यात शिक्षाविद् डॉ. संपूर्णानंद ने आधुनिक शिक्षा पर विचार व्यक्त करते हुए कहीं कहा है कि हम बच्चों को पढ़ाते हुए व्याकरण पढ़ाने के बहाने उनकी भाषा छीन लेते हैं, भूगोल पढ़ाने के बहाने उनकी जमीन छीन लेते हैं,... बच्चे जन्म तो लेते हैं मानव समाज में; लेकिन हम उन्हें जानदार ग्रामोफोन बना देते हैं।

शिक्षा पद्धति को अच्छी तरह पर रखकर राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त जी ने अपने विचार दिए थेः **'दासत्व के परिणाम वाली आज शिक्षा है यहाँ, है दो ही केवल जीविकाएँ भृत्यता शिक्षा यहाँ।'** ऐसे परिणाम देने वाली यह शिक्षा भी सबके लिए सहज नहीं है। क्योंकि अब अध्ययन आचार्य नहीं कराते, बल्कि अध्यापक कराते हैं जो बिना शुल्क के विद्यादान नहीं करते। यही देख कर कविवर ने आगे कहा हैः **'बिकती यहाँ शिक्षा अहो! जो शक्ति है तो क्रय करो! यदि शुल्क आदि ना दे सको, तो मूर्ख रहकर ही मरो!!'** यही भारत की वर्तमान शिक्षा पद्धति का यथार्थ रूप है।

शिक्षा का परिणाम क्या होना चाहिए–यह संसार की किसी भी अन्य संस्ति, समुदाय या तबके द्वारा नहीं बताया जाता है। यह सिर्फ और सिर्फ भारतीय संस्कृति में मिलता है–

विद्या ददाति विनयं विनयात् याति पात्रताम्।
पात्रत्वात् धनमाप्नोति धनात् धर्म ततः सुखम्।।

अर्थात् विद्या विनय देती है, विनय से पात्रता, पात्रता से धन, धन से धर्म, और धर्म से सुख प्राप्त होता है। यह संस्त सूक्ति अति उत्तम एवं अनुकरणीय है। परन्तु प्रायः यह देखा गया है कि विद्या प्राप्ति के पश्चात् विवेक के अभाव में, विनय का प्रादुर्भाव होने के स्थान पर अहंकार व अविनय की उत्पत्ति होती है। तत्पश्चात अहंकार–अविनय–सित्त–विद्या से येन केन प्रकारेण योग्यता एवं धन भी प्राप्त हो जाता है; परन्तु धर्म नहीं होता है। अतः भौतिक सुख तो अवश्य प्राप्त होते हैं परन्तु स्थायी आत्मिक सुख से प्राणी प्राण सदैव वंचित रहता है। विवेकहीन विद्या का परिणाम क्षोभ जनक क्षणिक भौतिक सुख ही हैं।

यह विवेक क्या है जो विद्यार्जन के पश्चात भी अधिकांश जनों को नहीं आता है? वास्तव में वर्तमान में जिसे ज्ञान अथवा विद्या कह कर बेचा जा रहा है– वह केवल सूचना है। मस्तिष्क में सूचनाएं भर लेने से प्राणी एक सूचना संग्रहालय तो बन सकता है, परन्तु मनुष्य कदापि नहीं बन सकता। आज तक की समस्त महादुर्घटनाएं जिन्हें मानव निर्मित दुर्घटना (Man made Calamities) कहा जाता है, उनके जनक सूचना के भंडार, परन्तु विवेक हीन मनुष्य थे। प्रश्न यह है कि यह विवेक आता कहाँ से है?

ऊपर हम देश के न्यूनतम नब्बे प्रतिशत विद्यार्थियों को पढ़ाने वाली तीन प्रचलित शिक्षाक्षेत्रों की समीक्षा कर चुके हैं। किन्तु मानव में विनय नहीं, सुख नहीं, शान्ति नहीं, आराम नहीं, सुरक्षा नहीं, समन्वय, सौहार्द, सत्याग्रह और सज्जनता नहीं।

शिक्षा के नाम पर चल रहे अविनय, दुःख, अशान्ति, तनाव, वैमनस्य, कुण्ठा, संकीर्णता

और दुर्जनता के कारखानों की सच्चाई पहचानकर एक निःस्पृह, निर्भय और निर्भ्रांत दृष्टा ने भविष्य को स्वर्ग बनाने के लिए मानव समाज के कच्चे माल शिशुओं को श्रेष्ठ बनाने के लिए करोड़ों वर्षों तक प्रमाणित पद्धति का पुनः शंखनाद किया। अपने जीवनकाल में ही उस पुरोधा ने स्वयं पाठशालाएँ खोलकर इसका प्रयोग पुनः संसार के सामने रखा। अपने अमरग्रंथ सत्यार्थप्रकाश का प्रथम समुल्लास परमात्मा को समर्पित कर अगले दो समुल्लास बालशिक्षा, ब्रह्मचर्य, पठनपाठन, पाठ्य और अपाठ्य ग्रन्थों पर लिखते हुए शिशु के जन्मदाता मातापिता से लेकर शासकों तक की शिक्षा के प्रति जिम्मेवारी पुनर्निधारित करते हुए कहा: –

"बालकों को माता सदा उत्तम शिक्षा करे, जिससे सन्तान सभ्य हों और किसी अंग से कुचेष्टा न करने पावें। जब बोलने लगें तब उसकी माता बालक की जिह्वा जिस प्रकार कोमल होकर स्पष्ट उच्चारण कर सके वैसा उपाय करे कि जो जिस वर्ण का स्थान, प्रयत्न अर्थात् जैसे 'प' इसका ओष्ठ स्थान और स्पृष्ट प्रयत्न दोनों ओष्ठों को मिलाकर बोलना, ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत अक्षरों को ठीक–ठीक बोल सकना। मधुर, गम्भीर, सुन्दर स्वर, अक्षर, मात्र, पद, वाक्य, संहिता अवसान भिन्न–भिन्न श्रवण होवे। जब वह कुछ–कुछ बोलने और समझने लगे तब सुन्दर वाणी और बड़े, छोटे, मान्य, पिता, माता, राजा, विद्वान् आदि से भाषण, उनसे वर्त्तमान और उनके पास बैठने आदि की भी शिक्षा करें जिस से कहीं उन का अयोग्य व्यवहार न हो के सर्वत्र प्रतिष्ठा हुआ करे। जैसे सन्तान जितेन्द्रिय, विद्याप्रिय और सत्संग में रुचि करें वैसा प्रयत्न करते रहें। ....जब पाँच–पाँच वर्ष के लड़का लड़की हों तब देवनागरी अक्षरों का अभ्यास करावें। अन्य देशीय भाषाओं के अक्षरों का भी। उसके पश्चात् जिन से अच्छी शिक्षा, विद्या, धर्म, परमेश्वर, माता, पिता, आचार्य, विद्वान्, अतिथि, राजा, प्रजा, कुटुम्ब, बन्धु, भगिनी, भृत्य आदि से कैसे–कैसे वर्त्तना – इन बातों के मन्त्र, श्लोक, सूत्र, गद्य, पद्य भी अर्थ सहित कण्ठस्थ करावें। जिन से सन्तान किसी धूर्त के बहकाने में न आवें और जो–जो विद्या, धर्मविरुद्ध भ्रान्तिजाल में गिराने वाले व्यवहार हैं उन का भी उपदेश कर दें जिस से भूत प्रेत आदि मिथ्या बातों का विश्वास न हो।"

"सब मिथ्या व्यवहारों को छोड़ कर धार्मिक, सब देश के उपकारकर्त्ता, निष्कपटता से सब को विद्या पढ़ाने वाले, उत्तम विद्वान् लोगों का प्रत्युपकार करना। जैसा वे जगत् का उपकार करते हैं, इस काम को कभी न छोड़ना चाहिये। और जितनी लीला रसायन, मारण, मोहन, उच्चाटन, वशीकरण आदि करना कहते हैं उन को भी महापामर समझना चाहिये। इत्यादि मिथ्या बातों का उपदेश बाल्यावस्था ही में सन्तानों के हृदय में डाल दें कि जिस से स्वसन्तान किसी के भ्रमजाल में पड़ के दुःख न पावें और वीर्य की रक्षा में आनन्द और नाश करने में दुःखप्राप्ति भी जना देनी चाहिये। जैसे– 'देखो जिसके शरीर में सुरक्षित वीर्य रहता है तब उस को आरोग्य, बुद्धि, बल, पराक्रम बढ़ के बहुत सुख की प्राप्ति होती है। इसके रक्षण में यही रीति है कि विषयों की कथा, विषयी लोगों का संग, विषयों का ध्यान, स्त्री का दर्शन, एकान्त सेवन, सम्भाषण और स्पर्श आदि कर्म से ब्रह्मचारी लोग पृथक् रह कर उत्तम शिक्षा और पूर्ण विद्या को प्राप्त होवें। जिसके शरीर में वीर्य नहीं होता वह नपुंसक महाकुलक्षणी और जिस को प्रमेह रोग होता है वह दुर्बल, निस्तेज, निर्बुद्धि, उत्साह, साहस, धैर्य, बल, पराक्रमादि गुणों से रहित होकर नष्ट हो जाता

है। जो तुम लोग सुशिक्षा और विद्या के ग्रहण, वीर्य की रक्षा करने में इस समय चूकोगे तो पुनः इस जन्म में तुम को यह अमूल्य समय प्राप्त नहीं हो सकेगा। जब तक हम लोग गृहकर्मों के करने वाले जीते हैं तभी तक तुम को विद्या–ग्रहण और शरीर का बल बढ़ाना चाहिये।' इसी प्रकार की अन्य–अन्य शिक्षा भी माता और पिता करें।"

"इसीलिए 'मातृमान् पितृमान्' शब्द का ग्रहण उक्त वचन में किया है अर्थात् जन्म से ५वें वर्ष तक बालकों को माता, ६ वर्ष से ८वें वर्ष तक पिता शिक्षा करें और ९वें वर्ष के आरम्भ में द्विज अपने सन्तानों का उपनयन करके आचार्य कुल में अर्थात् जहां पूर्ण विद्वान् और पूर्ण विदुषी स्त्री शिक्षा और विद्यादान करने वाली हों वहां लड़के और लड़कियों को भेज दें और शूद्रादि वर्ण उपनयन किये विना विद्याभ्यास के लिये गुरुकुल में भेज दें।"

"उन्हीं के सन्तान विद्वान्, सभ्य और सुशिक्षित होते हैं, जो पढ़ाने में सन्तानों का लाड़न कभी नहीं करते किन्तु ताड़ना ही करते रहते हैं। इसमें व्याकरण महाभाष्य का प्रमाण है–

सामृतैः पाणिभिर्घ्नन्ति गुरवो न विषोक्षितैः।
लालनाश्रयिणो दोषास्ताडनाश्रयिणो गुणाः।

अर्थ–जो माता, पिता और आचार्य, सन्तान और शिष्यों का ताड़न करते हैं वे जानो अपने सन्तान और शिष्यों को अपने हाथ से अमृत पिला रहे हैं और जो सन्तानों वा शिष्यों का लाड़न करते हैं वे अपने सन्तानों और शिष्यों को विष पिला के नष्ट भ्रष्ट कर देते हैं। क्योंकि लाड़न से सन्तान और शिष्य दोषयुक्त तथा ताड़ना से गुणयुक्त होते हैं और सन्तान और शिष्य लोग भी ताड़ना से प्रसन्न और लाड़न से अप्रसन्न सदा रहा करें। परन्तु माता, पिता तथा अध्यापक लोग ईर्ष्या, द्वेष से ताड़न न करें किन्तु ऊपर से भयप्रदान और भीतर से पाष्टि रक्खें।"

"जैसे अन्य शिक्षा की; वैसी चोरी, जारी, आलस्य, प्रमाद, मादक द्रव्य, मिथ्याभाषण, हिसा, क्रूरता, ईर्श्या, द्वेष, मोह आदि दोषों को छोड़ने और सत्याचार के ग्रहण करने की शिक्षा करें। क्योंकि **जिस पुरुष ने जिसके सामने एक वार चोरी, जारी, मिथ्याभाषणादि कर्म किया उस की प्रतिष्ठा उस के सामने मृत्युपर्य्यन्त नहीं होती।** जैसी हानि प्रतिज्ञा मिथ्या करने वाले की होती है वैसी अन्य किसी की नहीं। इस से जिस के साथ जैसी प्रतिज्ञा करनी उस के साथ वैसे ही पूरी करनी चाहिये।"

"सदा सत्यभाषण और सत्यप्रतिज्ञायुक्त सब को होना चाहिये। किसी को अभिमान करना योग्य नहीं, क्योंकि **'अभिमानः श्रियं हन्ति'** यह विदुरनीति का वचन है। जो अभिमान अर्थात् अहंकार है वह सब शोभा और लक्ष्मी का नाश कर देता है, इस वास्ते अभिमान करना न चाहिये।"

"यान्यस्माकँ सुचरितानि तानि त्वयोपास्यानि नो इतराणि।। यह तैत्तिरीयोपनिशत् का वचन है।.. हे सन्तानो! जो 'अनवद्य' अनिन्दनीय अर्थात् धर्मयुक्त कर्म हैं वे ही तुम को करने योग्य हैं, अधर्मयुक्त नहीं।"

"इसका यह अभिप्राय है कि माता पिता आचार्य्य अपने सन्तान और शिष्यों को सदा सत्य उपदेश करें और यह भी कहें कि जो–जो हमारे धर्मयुक्त कर्म हैं उन–उन का ग्रहण करो और जो–जो दुष्ट कर्म हों उनका त्याग कर दिया करो।"

"माता शत्रुः पिता वैरी येन बालो न पाठितः।
न शोभते सभामध्ये हंसमध्ये वको यथा ।।

यह किसी कवि का वचन है। वे माता और पिता अपने सन्तानों के पूर्ण वैरी हैं जिन्होंने उन को विद्या की प्राप्ति न कराई, वे विद्वानों की सभा में वैसे तिरस्त और कुशोभित होते हैं जैसे हंसों के बीच में बगुला। यही माता, पिता का कर्त्तव्य कर्म परमधर्म और कीर्ति का काम है जो अपने सन्तानों को तन, मन, धन से विद्या, धर्म, सभ्यता और उत्तम शिक्षायुक्त करना। यह बालशिक्षा में थोड़ा सा लिखा, इतने ही से बुद्धिमान् लोग बहुत समझ लेंगे।"

वेद और ईश्वर विषयक समुल्लास ७ में महर्षि लिखते हैं:

"जब तक आर्यावर्त्त देश से शिक्षा नहीं गई थी तब तक मिश्र, यूनान और यूरोप देश आदिस्थ मनुष्यों में कुछ भी विद्या नहीं हुई थी और इंगलैण्ड के कुलुम्बस आदि पुरुष अमेरिका में जब तक नहीं गये थे तब तक वे भी सहस्रों, लाखों क्रोड़ों वर्षों से मूर्ख अर्थात् विद्याहीन थे। पुनः सुशिक्षा के पाने से विद्वान् हो गये हैं वैसे ही परमात्मा से सृष्टि की आदि में विद्या शिक्षा की प्राप्ति से उत्तरोत्तर काल में विद्वान् होते आये।"

ईश्वरीय शिक्षा को रेखांकित करते नवमे समुल्लास में महर्षि आगे लिखते हैं :

"जब इन्द्रियां अर्थों में, मन इन्द्रियों और आत्मा मन के साथ संयुक्त होकर प्राणों को प्रेरणा करके अच्छे वा बुरे कर्मों में लगाता है तभी वह बहिर्मुख हो जाता है। उसी समय भीतर से आनन्द, उत्साह, निर्भयता और बुरे कर्मों में भय, शंका, लज्जा उत्पन्न होती है। वह अन्तर्यामी परमात्मा की शिक्षा है। जो कोई इस शिक्षा के अनुकूल वर्त्तता है वही मुक्तिजन्य सुखों को प्राप्त होता है। और जो विपरीत वर्त्तता है वह बन्धजन्य दुःख भोगता है।"

अर्थात् जो कुछ सत्यार्थप्रकाश के पूर्वार्ध अर्थात पहले से दसवें में समुल्लास तक लिखा है वह सब शिक्षा का विषय होना ही चाहिए। ग्यारहवें समुल्लास के आरंभ में शिक्षा का महत्व बताते और अपात्र गुरुओं को दण्ड की व्यवस्था देते महर्षि लिखते हैं:

"मूर्तिपूजा ब्रह्म की प्राप्ति में स्थूल लक्ष्यवत् नहीं किन्तु धार्मिक विद्वान् और सृष्टिविद्या है। इस को बढ़ाता–बढ़ाता ब्रह्म को भी पाता है। और मूर्तिपूजा गुड़ियों के खेलवत् नहीं किन्तु प्रथम अक्षराभ्यास सुशिक्षा का होना गुड़ियों के खेलवत् ब्रह्म की प्राप्ति का साधन है। सुनिये! जब अच्छी शिक्षा और विद्या को प्राप्त होगा तब सच्चे स्वामी परमात्मा को भी प्राप्त हो जायेगा।...... परन्तु जो गुरु लोभी, क्रोधी, मोही और कामी हो तो उस को सर्वथा छोड़ देना, शिक्षा करनी, सहज शिक्षा से न माने तो अर्घ्य, पाद्य अर्थात् ताड़ना, दण्ड, प्राणहरण तक भी करने में कुछ भी दोष नहीं। जो विद्यादि सदगुणों में गुरुत्व नहीं है, झूठ–मूठ कण्ठी तिलक वेद–विरुद्ध मन्त्रेपदेश करने वाले हैं – वे गुरु ही नहीं किन्तु गड़रिये जैसे हैं। जैसे गड़रिये अपनी भेड़ बकरियों से दूध आदि से प्रयोजन सिद्ध करते हैं वैसे ही शिष्यों के चेले चेलियों के धन हर के अपना प्रयोजन करते हैं।"

<u>इसी समुल्लास के अंत में महर्शि लिखते हैं :</u>

"बहुत से ठग होते हैं जिन को विद्वान् ही परीक्षा कर सकते हैं और कोई नहीं। इसलिए वेदादि विद्या का पढ़ना, सत्संग करना होता है जिस से कोई उस को ठगाई में न फँसा सके। औरों को भी बचा सके क्योंकि मनुष्य का नेत्र विद्या ही है। विना विद्या शिक्षा के ज्ञान नहीं होता। जो बाल्यावस्था से उत्तम शिक्षा पाते हैं वे ही मनुष्य और विद्वान् होते हैं। जिन को कुसंग है वे दुष्ट पापी महामूर्ख हो कर बड़े दुःख पाते हैं। इसीलिये ज्ञान को विशेष कहा है कि जो जानता है वही मानता है।

न वेत्ति यो यस्य गुणप्रकर्ष स तस्य निन्दां सततं करोति ।
यथा किराती करिकुम्भजाता मुक्ता परित्यज्य बिभर्ति गुञ्जा ।।

यह किसी कवि का श्लोक है। जो जिस का गुण नहीं जानता वह उस की निन्दा निरन्तर करता है। जैसे जंगली भील गजमुक्ताओं को छोड़ गुञ्जा का हार पहिन लेता है वैसे ही जो पुरुष विद्वान्, ज्ञानी, धार्मिक सत्पुरुषों का संगी, योगी, पुरुषार्थी, जितेन्द्रिय सुशील होता है वही धर्मार्थ, काम, मोक्ष को प्राप्त होकर इस जन्म और परजन्म में सदा आनन्द में रहता है।"

विद्या ही मनुष्य, परिवार, समाज, राष्ट्र और विश्व के उन्नत भविष्य का आधार है। अतः बालक के लिए कठिनाई होने पर भी यह प्रदान की जानी चाहिये। इस महत्तव के कारण ही महर्षि सत्यार्थप्रकाश की भूमिका में लिखते हैः

"जो–जो विद्या और धर्मप्राप्ति के कर्म हैं, वे प्रथम करने में विष के तुल्य और पश्चात् अमृत के सदृश होते हैं। ऐसी बातों को चित्त में धरके मैंने इस ग्रन्थ को रचा है।"

दूसरे समुल्लास में लिखते हैः "पाठशालाओं से एक योजन अर्थात् चार कोश दूर ग्राम वा नगर रहे। सब को तुल्य वस्त्र, खान–पान, आसन दिये जायें, चाहे वह राजकुमार व राजकुमारी हो, चाहे दरिद्र के सन्तान हों, सब को तपस्वी होना चाहिये।"

भारत में स्वार्थवश विद्या का लोप करते करते जन्मना स्वयं को ब्राह्मण कहने वालों ने दूसरे सभी को शिक्षा से वंचित किया। महर्षि ने शिखा को सबके लिए अनिवार्य मानते लिखाः "... .और विशेषकर राजा इतर क्षत्रिय, वैश्य और उत्तम शूद्र जनों को भी विद्या का अभ्यास अवश्य करावें, क्योंकि जो ब्राह्मण हैं वे ही केवल विद्याभ्यास करें और क्षत्रियादि न करें तो विद्या, धर्म, राज्य और धनादि की वृद्धि कभी नहीं हो सकती। क्योंकि ब्राह्मण तो केवल पढ़ने पढ़ाने और क्षत्रियादि से जीविका को प्राप्त होके जीवन धारण कर सकते हैं। जीविका के आधीन और क्षत्रियादि के आज्ञादाता और यथावत् परीक्षक दण्डदाता न होने से ब्राह्मणादि सब वर्ण पाखण्ड ही में फंस जाते हैं और **जब क्षत्रियादि विद्वान् होते हैं तब ब्राह्मण भी अधिक विद्याभ्यास और धर्मपथ में चलते हैं और उन क्षत्रियादि विद्वानों के सामने पाखण्ड, झूठा व्यवहार भी नहीं कर सकते और जब क्षत्रियादि अविद्वान् होते हैं तो वे जैसा अपने मन में आता है वैसा ही करते कराते हैं। इसलिये ब्राह्मण भी अपना कल्याण चाहैं तो क्षत्रियादि को वेदादि सत्यशास्त्र का अभ्यास अधिक प्रयत्न से करावें।** क्योंकि क्षत्रियादि ही विद्या, धर्म, राज्य और लक्ष्मी की वृद्धि करंने हारे हैं, वे कभी भिक्षावृत्ति नहीं करते, इसलिए वे विद्या व्यवहार में

पक्षपाती भी नहीं हो सकते। और जब सब वर्णों में विद्या सुशिक्षा होती है तब कोई भी पाखण्डरूप अधर्मयुक्त मिथ्या व्यवहार को नहीं चला सकता। इससे क्या सिद्ध हुआ कि क्षत्रियादि को नियम में चलाने वाले ब्राह्मण और संन्यासी तथा ब्राह्मण और संन्यासी को सुनियम में चलाने वाले क्षत्रियादि होते हैं। **इसलिये सब वर्णों के स्त्री पुरुषों में विद्या और धर्म का प्रचार अवश्य होना चाहिये।**"

शिक्षा के लिए प्रयुक्त ग्रंथ उत्तम हों इसी के लिए इस महर्षि ने पंचपरीक्षा का विधान किया, जिसकी चर्चा पूर्व के किसी अंक में की जा चुकी है। विद्या क्यों अनिवार्य है– यह बात महर्शि के ये मार्मिक शब्द बताते हैं: –

"आजकल के सम्प्रदायी और स्वार्थी ब्राह्मण आदि जो दूसरों को विद्या सत्संग से हटा और अपने जाल में फंसा के उन का तन, मन, धन नष्ट कर देते हैं और चाहते हैं कि जो क्षत्रियादि वर्ण पढ़ कर विद्वान् हो जायेंगे तो हमारे पाखण्डजाल से छूट और हमारे छल को जानकर हमारा अपमान करेंगे इत्यादि विघ्नों को राजा और प्रजा दूर करके अपने लड़कों और लड़कियों को विद्वान् करने के लिये तन, मन, धन से प्रयत्न किया करें।

विना विद्या के इत्यादि काम अच्छे प्रकार कभी ठीक नहीं हो सकते। देखो! आर्य्यावर्त्त के राजपुरुषों की स्त्रियां धनुर्वेद अर्थात् युद्धविद्या भी अच्छी प्रकार जानती थीं क्योंकि जो न जानती होतीं तो कैकेयी आदि दशरथ आदि के साथ युद्ध में क्योंकर जा सकती ? और युद्ध कर सकती। इसलिये ब्राह्मणी को सब विद्या, क्षत्रिया को सब विद्या और युद्ध तथा राजविद्याविशेष, वैश्या को व्यवहारविद्या और शूद्रा को पाकादि सेवा की विद्या अवश्य पढ़नी चाहिये। **जैसे पुरुषों को व्याकरण, धर्म और अपने व्यवहार की विद्या न्यून से न्यून अवश्य पढ़नी चाहिये। वैसे स्त्रियों को भी व्याकरण, धर्म, वैद्यक, गणित, शिल्पविद्या तो अवश्य ही सीखनी चाहिये।** क्योंकि इनके सीखे विना सत्याऽसत्य का निर्णयय पति आदि से अनुकूल वर्त्तमान, यथायोग्य सन्तानोत्पत्ति, उनका पालन, वर्द्धन और सुशिक्षा करना, घर के सब कार्य्यों को जैसा चाहिये वैसा करना कराना वैद्यकविद्या से औषधवत् अन्न पान बना और बनवाना नहीं कर सकती। जिससे घर में रोग कभी न आवे और सब लोग सदा आनन्दित रहैं। शिल्पविद्या के जाने विना घर का बनवाना, वस्त्र आभूषण आदि का बनाना बनवाना, गणितविद्या के विना सब का हिसाब समझना समझाना, वेदादि शास्त्रविद्या के विना ईश्वर और धर्म को न जानके अधर्म से कभी नहीं बच सके। इसलिये वे ही धन्यवादार्ह और तत्य हैं कि जो अपने सन्तानों को ब्रह्मचर्य, उत्तम शिक्षा और विद्या से शरीर और आत्मा के पूर्ण बल को बढ़ावें।"

इस महर्षि के अमर ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश से उद्धृत उपर्युक्त कुछ अंशों के शब्दगांभीर्य को अनुभव करने की प्रार्थना है। यह शिक्षापद्धति आर्यसमाज के बहुत से गुरुकुलों में प्रचलित है, जिनसे बहुत मानवहितकारी विभूतियाँ निर्मित हुईं और हो रही है। ऐसी सुपरीक्षित शिक्षा की इतनी सुन्दर सर्वकल्याणकारी पद्धति का परिचय पुनः विश्व से कराने वाले यह महर्षि, यह पुरोधा और कोई नहीं, स्वनामधन्य **महर्षि दयानन्द सरस्वती** महाराज है ।

–कमल

सनातन धर्म से संघर्ष

३. सनातनधर्म-महामण्डल

आर्यसमाज की शक्ति का रहस्य उसका मजबूत संगठन है। आर्य प्रतिनिधि सभा की स्थापना के पीछे समाज की शक्ति और भी अधिक हो गई। पौराणिक धर्म में कुछ समय में आत्मरक्षा की भावना पैदा हो गई थी। आर्यसमाज के प्रचार से जिन लोगों के हार्दिक भावों अथवा थैलियों पर चोट पहुँची थी, वह लोहे का कवच पहनने का उद्योग कर रहे थे। पौराणिक धर्म ने आत्मरक्षा के लिए कई प्रकार के उद्योगों को आरम्भ किया। स्थान - स्थान पर धर्म- सभा, पंडित-सभा, सनातनधर्म-सभा आदि की स्थापना होने लगी। पौराणिक सिद्धान्तों की पुष्टि में मासिक तथा साप्ताहिक पत्र निकलने लगे और शास्त्रार्थों का समारोह होने लगा। इन फुटकर यत्नों के अतिरिक्तत एक बड़ा उद्योग जो इस समय में आरम्भ हुआ, वह काशी में भारत धर्म महामण्डल कीस्थापना थी।

मण्डल की एक शाखा पंजाब मेंभी स्थापित हुई। उसके मन्त्री प्रसिद्ध वाग्मी पं. दीनदयालु शर्मा बने। उस समय शर्मा जी मुन्शी दीनदयालु के नाम से प्रसिद्ध थे।

जनवरी १८८९ के मध्यभाग में आपने लाहौर में व्याख्यानों का सिलसिला जारी किया। शर्मा जी फारसी और हिन्दी के अच्छे विद्वान् थे। आपका स्वर गम्भीर और मीठा था। बोलने में चतुरता और प्रोढ़ता पाई जाती थी, भाषण के बीच-बीच तुलसी और सूरदास के दोहे ऐसे मनोहर प्रतीत होते थे, जैसे उद्यान में गुलाब। आप जब स्वर-भंगी के साथ चौपाई का पाठ करते थे, तब श्रद्धालु श्रोता मन्त्रमुग्ध होकर सिर हिलाने लगते थे। लाहौर में मन्त्रीजी के व्याख्यानों ने एक हलचल - सी पैदा कर दी। आपने मूर्त्ति-पूजा, श्राद्ध आदि विषयों पर व्याख्यान दिये।

आर्यसमाजों की ओर इस इन व्याख्यानों के उत्तर दिये गये। स्वामी श्री स्वात्मानन्द जी, स्वा. अच्युतानन्द जी और पं.गुरुदत्त एम.ए. के जोरदार भाषण हुए। प्रतीत होता है कि आर्यसमाज के व्याख्यानों का अच्छा प्रभाव हुआ। एक जवाबी सभा में पं. गुरुदत्त जी के भाषण के पश्चात् आर्यसमाज के 50 सभासद् बने। शास्त्रार्थ की थोड़ी - बहुत चर्चा हुई परन्तु कुछ फल न निकला। दोनों ओर से व्याख्यान अलग-अलग स्थानों में होते रहे। महामण्डल के डेपुटेशन का सनातन धर्मी लोगों की ओर से अच्छा आदर हुआ। धन से भी पुष्कल सत्कार हुआ। प्रतीत होता है कि डेपुटेशन का जो भेंट मिली, उसके बंटवारे के सम्बन्ध में बहुत मतभेद पैदा हो गए थे। 'खैरख्वाह कश्मीर' नाम के सतानतधर्मी पत्र ने उन्हीं दिनों शिकायत की थी कि मण्डल के मन्त्री ने मण्डल का रुपया खा लिया। प्रतीत होता हैं क लाहौर के

सनातनधर्मियों में ऐसे समाचारों ने बहुत खलबली मचा दी थी। कुछ ही दिनों पीछे लाहौर की सनातन धर्म सभा दो हिस्सों में विभक्त हो गई। एक पक्ष मण्डल के मन्त्री का पोषण करता था और दूसरा उसकी आलोचना करता था। आर्यसमाज के समाचार-पत्रों ने इन घटनाओं पर दो टिप्पणियां की । एक तो इस फूट को सनातन धर्म की निर्बलता का फल बताया और दूसरे व्यंग्य रूप से प्रस्ताव किया कि यदि मण्डल के मन्त्री का पुष्कल मासिक वेतन रख दिया जाय तो झगड़ा दूर हो सकता है।

महामण्डल के साथ आर्यसमाज की दूसरी मुठभेड़ वृन्दावन में हुई। १८८९ ई. के अप्रैल मास में वृन्दावन में एक मेला था। उस समय से लाभ उठाकर मण्डल के अधिकारियों ने प्रचार का समारोह किया। भारत भर के सनातनधर्मी पण्डित एकत्र हुए। मथुरा आर्यसमाज की ओर से मण्डल का प्रत्युतर देने के लिए प्रचार का प्रबन्ध किया गया था। लगभग 200 आर्य सज्जन एकत्र हुए, जिनमें से अधिकांश संस्कृतज्ञ थे। आर्यसमाज ने पृथक् डेरा तैयार किया था, जहाँ प्रतिदिन व्याख्यान होते थे। स्वामी स्वात्मानन्द जी के भाषण को सुनने को लोग इतने उत्सुक रहते थे कि प्रतिदिन उन्हें कुछ न कुछ बोलना पड़ता था। आपका भाषण स्पष्ट, रोचक और युक्ति पूर्ण होता था। आर्यसमाज के कार्यकर्ता जानते थे कि मथुरा और वृन्दावन पौराणिक गढ़ हैं। उन्हें आशा नहीं थी कि उस गढ़ में सच्ची परन्तु कड़वी बात सुनने को कोई तैयार होगा, परन्तु आर्यसमाज के समाचार पत्रों में प्रचार का जो वृत्तान्त छपा है, उससे प्रतीत होता है कि जनता ने आर्यसमाज की बातों को बड़ी शान्ति से सुना।

4. शास्त्रार्थ

शास्त्रार्थ का युग प्रारम्भ हो चुका था। स्थान-स्थान पर छोटे-छोटे शास्त्रार्थ तो होते ही रहते थे परन्तु बड़े-बड़े संग्रामों का भी अभाव नहीं था। उस समय के शास्त्रार्थों का वृत्तान्त पढ़ने से ही प्रतीत होता है कि श्रोता लोग जिज्ञासा से प्रेरित होते थे। हिन्दूसमाज में एक विशेष हलचल पैदा हो गई थी, जिसका असर बहत व्यापी हो रहा थी। लोग सच्चाई तक पहुँचने को उत्सुक थे। शास्त्रार्थ तमाशा या रौनक बढ़ाने का साधन नहीं समझा जाता था, वह अभी तक एक जानदार पदार्थ था। लोग सत्य को जानने के उद्देश्य से शास्त्रार्थों में जाते थे, चिकने घड़े बनकर केवल ताली पीटने के लिए नहीं। उस समय भी कुछ चिकने घड़े अवश्य थे, परन्तु उनकी इतनी संख्या नही थी कि सच्चे जिज्ञासुओं पर हावी हो जाती। इस प्रकार उस समय के शास्त्रार्थ कुछ असलीयत रखते थे।

उस समय के शास्त्रार्थों में देहरादून का शास्त्रार्थ विशेषत: वर्णन योग्य है। उसमें कोई प्रसिद्ध मल्ल अखाड़ें में नही उतरे थे। तो भी जिस रीति से वाद-विवाद का संचालन हुआ, वह कई अंशों में अनुकरणीय थी। यह शास्त्रार्थ १८८९ सन् के मार्च मास की १४ तारीख को आरम्भ हुआ।। शास्त्रार्थ का विषय 'श्राद्ध' था। उस समय मूर्त्तिपूजा और श्राद्ध यह दो विषय शास्त्रार्थ करने वालों को बहुत प्रिय थे। वादी,प्रतिवादी इन दोनों विषयों पर शास्त्रार्थ करते हुए तीक्ष्ण व्यंग्य बाणों की वर्षा करते और प्रसन्न होते थे । सनातन विचार

के लोगों को अपने मर्मस्थल यही प्रतीत होते थे । शास्त्रार्थ के नियम ये रखे गये थे कि वेद तथा षट् शास्त्रों के प्रमाणों से ही मृतक श्राद्ध की सत्यता पर विचार हो, वादी और प्रतिवादी अपने-अपने प्रमाणों को लिख कर लायें और समय की समाप्ति पर प्रमाणों की एक कॉपी हस्ताक्षर करके प्रतिपक्षी को दे दें । शास्त्रार्थ ५ दिन तक रहा । पहले दिन सनातन धर्म की ओर से श्राद्ध का प्रतिपादन किया गया, दूसरे दिन आर्यसमाज ने उत्तर दिया, तीसरे दिन फिर सनातन धर्म के पण्डित अपने अपने मत की स्थापना की, जिसका उत्तर चौथे दिन आर्यसमाज ने दिया। अन्तिम दिन सनातन धर्म की ओर से सनातन धर्म का अन्तिम भाषण हुआ । इस शास्त्रार्थ में सनातन धर्म कीओर से एक अद्भुत बात यह कही गई थी कि मनुस्मृति भी षड्दर्शनों में है । बात यह हुई की शास्त्रार्थ में केवल वेद और षड् दर्शनों के प्रमाण प्रस्तुत करने की बात तय हुई थी । सनातनी पण्डितों ने श्राद्ध के पक्ष में मनस्मृति का प्रमाण दिया। आर्यसमाज की ओर से आक्षेप किया गया, तो उत्तर यह दिया गया कि मनुस्मृति भी षड्दर्शनों में से है । संख्या पूरी करने के लिए न्याय और वैशेषिक को एक कर दिया । यह तर्क शायद उस समय के पीछे फिर कभी नहीं दुहराया गया ।

शास्त्रार्थ के क्षेत्र में सनातन धर्म की ओर से एक नया मल्ल खड़ा हो रहा था। स्वामी केशवानन्द संस्कृत के अच्छे विद्वान् होने के अतिरिक्त देखनें में भी शानदार थे। उनके साथ साधुओं की एक बड़ी मंडली रहती थी और भक्तों का हजूम काफी था। चार घोड़ों की गाड़ी में स्वामी जी की सवारी निकलती थी, जिसके आगे-पीछे गेरुआ बाने कीखासी शान रहती थी। पंजाब में १८८९ में स्वामी केशवानन्द ने दौरा लगाया। जहाँ कहीं भी पहुँचे , वहीं आसमाज ने पीछा किया। रावलपिण्डी, लाहौर, अमृतसर आदि पंजाब के बड़े-बड़े शहरों में एक नए धर्मावतार ने दौरा लगाया। लाहौर में स्वामी केशवानन्द के व्याख्यानों के उत्तर में पं. गुरुदत्त एम.ए., स्वामी स्वात्मानन्द, ला. मुरलीधर, और मास्टर दुर्गाप्रसाद आदि आर्यपुरुषों के व्याख्यान हुए, जिनका अद्भुत प्रभाव हुआ। **स्वामी केशवानन्द ने कई वर्षों तक पंजाब की भक्त मण्डली को अपने धर्मोपदेश से अनुगृहीत करके इतना धन एकत्र कर लिया कि कुछ समय पीछे कनखल में विशाल कुटिया बनाकर राजसी ठाट के साथ तपश्चर्या आरम्भ कर दी। उस समय वे शास्त्रार्थ के क्षेत्र से बाहर चले गए।**

चुपके-चुपके आर्यसमाज के संस्कार किस तरह फैल रहे थे, इसका एक नमूना पर्याप्त होगा। पंजाब के पहाड़ी इलाके में मण्डी नाम की एक छोटी-सी रियासत है। वहाँ के नरेश २ दिसम्बर १८८९ को जालन्धर पहुँचे। एकान्त पहाड़ी में भी उनके कान तक ऋषि दयानन्द दयानन्द की आवाज पहुँच चुकी थी। जालन्धर में पहुंचते ही उन्होंने आर्यसमाज और सनातन धर्म सभा को निमन्त्रण भेज दिया। निमन्त्रण के उत्तर में ३ दिसम्बर को दोनों ओर के प्रतिनिधि महाराज के डेरे पर पहुँचे। सनातन धर्मसभा ने महाराज की सेवा में जनेऊ और इलायची भेंट की और आर्यसमाज की ओर से ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका और सत्यार्थप्रकाश ऋषिकृत ग्रन्थ भेंट किये गए। भेंट करते हुए समाज के मन्त्री लाला देवराज जी ने निम्नलिखित शब्द कहे:-

"राजन्! संसार में प्रिय झूठ बोलने वाले बहुत हैं, किन्तु दुर्लभ मनुष्य वे है जो अप्रिय सत्य को भी बुरा न मानें और सत्य कहें। सांसारिक पुरुष अशर्फियों और रुपयों की भेंट करते हैं, आर्यसमाज के सभासद् आपकीसेवा में दयानन्दकृत धर्म, अर्थ,काम और मोक्ष सिद्ध करने वाले ग्रन्थ पेश करते हैं, जिनसे आशा है कि आप फायदा उठायेंगे और अपनी प्रजा को भी उसके जरिये सुशोभित करेंगे।"

भेंट हो चुकने के पीछे धर्म-चर्चा आरम्भ हुई। अनेक प्रश्नोत्तर हुए। नियमपूर्वक शास्त्रार्थ तो नहीं हुआ परन्तु दोनों ही पक्ष अपनी-अपनी युक्तियाँ सामने रखते रहे। कई झपटें भी हो गई। एक सनातनी पंडितने महाराजको 'वेदमूर्त्ति' कह दिया इस पर आर्यसमाज के पंडित ने उसी समय प्रतिवाद कर दिया, और कहा कि वेदमूर्त्ति केवल ईश्वर है। महाराज पर आर्यसमाज की स्वाधीन प्रकृति का बहुत अच्छा असर था। अन्त में नरेश ने आर्यसमाज के कार्य की प्रशंसा करते हुए आशा प्रकट की कि मैं आर्यसमाज को मूर्त्तिपूजा के पक्ष में कर लूंगा। आर्यसमाज की ओर से उत्तर दिया गया-"यह तो देखा जायेगा कि कौन किसे अपना बना लेगा' दूसरे दिन आर्यसमाज के पण्डित मनीराम और सनातन धर्म सभा के पण्डित श्री श्रीकृष्ण जी का संस्कृत और हिन्दी में शास्त्रार्थ हुआ। अन्त में नरेश की ओर से दोनों पक्षों को धन्यवाद दिया गया और यह ज्ञान चर्चा समाप्त हुई।

शास्त्रार्थ का शौक धीरे-धीरे बढ़ रहा था। कहीं पत्र-व्यवहार तक ही समाप्ति हो जाती थी, कहीं थोड़ी-बहुत झपट भी हो जाती थी, परन्तु ठीक शास्त्रार्थ तक नौबत कम पहुँचती थी। जहाँ कहीं शास्त्रार्थ हो जाता था, वहा श्रोताओं पर कुछ न कुछ प्रभाव अवश्य पड़ता था। हिन्दू जनता आर्यसमाज की चोटों से विचलित हो गई थी। विचार रूढ़ि की अवस्था से निकल कर द्रव अवस्था में आ गए थे। द्रव अवस्था में विचारों पर वाद-विवाद का प्रभाव हो सकता है। उस समय के सब शास्त्रार्थों में आर्यसमाज जीता या हारा इस पर इतिहास लेखक कोई राय नहीं बना सकता, परन्तु वह इतना अवश्य कह सकता है कि उन शास्त्रार्थों से प्रचार में बड़ी सहायता मिली।

अपाहिज व बेसहारा गौधन की रक्षार्थ जोधपुर की प्राचीनतम महर्षि दयानन्द गौशाला,मण्डोर

—आर्यसमाज जोधपुर रातानाड़ा के अन्तर्गत

यह गौशाला जोधपुर की 109 वर्ष पुरानी गौशाला है इसमें गायों की देखभाल उचित ढंग से की जाती है आप भी अपना समय एवं दान देकर पुण्य के भागीदार बन सकते हैं । अत: आप द्वारा दिया गया दान 80जी के तहत छूट प्राप्त है । आप एवं अपने सहयोगियों से गौशाला में दान देकर 80जी की छूट प्राप्त कर लाभ प्राप्त कर पुण्य के भागीदार बन सकते हैं ।

ओ३म्

अथऋग्वेदादिभाष्यभूमिका

वेदोत्पत्ति– ६ –डॉ० रामनारायणजी शास्त्री

वेदों की तथा पृथ्वी की उत्पत्ति हुई अब इतने (गतांक में लिखे हुए लगभग दो अरब वर्ष) वर्ष बीत गए हैं और लगभग दो अरब बत्तीस करोड़ वर्ष भोगने शेष हैं दर्शनशास्त्र की परिभाषा के अनुसार काल नित्य और विभु पदार्थ है इसलिए इसके खंड खंड में की बात कुछ समझ से दूर ही नजर आती है। इसी संभावना का उत्तर देते हुए महर्षि आगे लिखते हैं: –

"कालस्य परिमाणार्थं ब्रह्माहोरात्रादयः सुगमबोधार्थाः संज्ञाः क्रियन्ते। यतः सहजतया जगदुत्पत्तिप्रलययोर्वर्षाणां वेदोत्पत्तेश्च परिगणनं भवेत्। मन्वन्तरपर्य्यावृत्तौ सृष्टेर्नैमित्तिक गुणानामपि पर्य्यावर्त्तनं किंचित् किंचित्भवत्यतो मन्वन्तरसंज्ञा क्रियते। अत्रैवं संख्यातव्यम् –

एकं दश शतं चैव सहस्रमयुतं तथा।
लक्षं च नियुतं चैव कोटिरर्बुदमेव च ।।१।।
वृन्दः खर्वो निखर्वश्च शंङ्खः पद्मं च सागरः।
अन्त्यं मध्यं परार्द्धं च दशवृद्ध्या यथाक्रमम् ।।२।।
इति सूर्यसिद्धान्तादिषु संख्यायते। अनया रीत्या वर्षादिगणना कार्येति।

भाषार्थः – क्योंकि सृष्टि की उत्पत्ति, वर्तमान, प्रलय और वेदों की उत्पत्ति के वर्षों को मनुष्य लोग सुख से गिन लें, इसीलिए यह ब्रह्मदिन आदि संज्ञा बांधी है। और मन्वन्तर के परिवर्तन मे सृष्टि के नैमित्तिक गुणों का भी कुछ परिवर्तन होता है, इसीलिये 'मन्वन्तर' संज्ञा बांधी है। वर्नमान सृष्टि की 'कल्प' संज्ञा और प्रलय की 'विकल्प' संज्ञा की है।

और इन वर्षो की गणना इस प्रकार से करनी चाहिए कि (,कं दश शतं चैव०) एक (१) दश (१०) शत (१००) हजार ((१०००), दश हजार (१००००), लाख (१०००००), नियुत (१००००००), करोड़ (१०००००००) अर्बुद (१००००००००), वृन्द (१०००००००००), खर्व (१००००००००००), निखर्व (१०००००००००००), शंख (१००००००००००००), पद्म (१०००००००००००००), सागर (१००००००००००००००), अन्त्य (१०००००००००००००००), मध्य (१००००००००००००००००), और परार्द्ध (१०००००००००००००००००), और दश दश गुणा बढ़ाकर इसी गणित से सूर्यसिद्धान्त आदि ज्योतिषग्रन्थों में गिनती की है।

'सहस्रस्य प्रमासि सहस्रस्य प्रतिमासि' ।।यजु० अ० १५।मं० ६५।। **'सर्वं वै सहस्रं सर्वस्य दातासि'** ।। श० क्रां० ७ अ० ५। **सर्वस्य जगतः सहस्रमिति नामास्ति, कालस्य चानेन सहस्रमहायुगसंख्यया परिमितस्य दिनस्य नक्तस्य च ब्रह्माण्डस्य प्रमा परिमाणस्य कर्त्ता परमेश्वरोऽस्ति। मन्त्रस्यास्य सामान्यार्थे वर्नमानत्वात्सर्वमभिवदतीति।**

एवमेवाग्रेऽपि योजनीयम्। ज्योतिषशास्त्रे प्रतिदिनचर्याऽभिहिताऽऽर्य्यैः क्षणमारभ्य कल्पकल्पान्तस्य गणितविद्यया स्पष्टं परिगणनं कृतं। अद्यपर्यन्तमपि क्रियते, प्रतिदिनमुच्चार्य्यते, ज्ञायते च। अतः कारणादियं व्यवस्थैव सर्वैर्मनुष्यैः स्वीकर्तुं योग्यास्ति, नान्येति निश्चयः। कुतो ह्यार्यैर्नित्यम्–'ओं तत्सत् श्रीब्रह्मणो द्वितीयप्रहरार्द्धे वैवस्वते मन्वन्तरेऽष्टाविंशतितमे कलियुगे कलिप्रथमचरणेऽमुकसंवत्सरायनर्तुमासपक्षदिननक्षत्र लग्नमुहूर्तेऽत्रेदं कृतं क्रियते च' **इत्याबालवृद्धैः प्रत्यहं विदितत्वादितिहासस्यास्य सर्वत्रार्य्यावर्त्तदेशे वर्नमानत्वात् सर्वत्रैकरसत्वादशक्येयं व्यवस्था केनापि विचालयितुमिति विज्ञायताम्। अन्यद्युग– व्याख्यानमग्रे करिष्यते, तत्र दृष्टव्यम्।**

भाषार्थः – (सहस्रस्य प्रमासि) सब संसार की 'सहस्र' संज्ञा है तथा पूर्वोक्त ब्रह्मदिन और रात्रि की भी सहस्र संज्ञा की जाती है, क्योंकि यह मन्त्र सामान्य अर्थ में वर्त्तमान है। सो हे परमेश्वर! आप इस हजार चतुर्युगी का दिन और रात्रि को प्रमाण अर्थात् निर्माण करने वाले हो। इसी प्रकार ज्योतिषशास्त्र में यथावत् वर्षों की संख्या आर्य लोगों ने गिनी है सो सृष्टि की उत्पत्ति से लेके आज पर्यन्त दिन–दिन गिनते और क्षण से लेके कल्पान्त की गणित विद्या को प्रसिद्ध करते चले आते हैं। अर्थात् परम्परा से सुनते–सुनाते, लिखते–लिखाते और पढ़ते–पढ़ाते आज पर्यन्त हम लोग चले आते हैं। यही व्यवस्था सृष्टि और वेदों की उत्पत्ति के वर्षों की ठीक है, और सब मनुष्यों को इसी को ग्रहण करना योग्य है। क्योंकि आर्य लोग नित्यप्रति 'ओं तत् सत्' परमेश्वर के इन तीन नामों का प्रथम उच्चारण करके कार्यों का आरम्भ और परमेश्वर का ही नित्य धन्यवाद करते चले आते हैं कि आनन्द में आजपर्यन्त परमेश्वर की सृष्टि और हम लोग बने हुए ह। और बहीखाते की नाईं लिखते–लिखाते, पढ़ते–पढ़ाते चले आये हैं कि पूर्वोक्त ब्रह्मदिन के दूसरे प्रहर के ऊपर मध्याह्न के निकट दिन आया है और जितने वर्ष वैवस्वत मनु के भोग होने को बाकी हैं, उतने ही मध्याह्न में बाकी रहे हैं, इसीलिये यह लेख है (**श्री ब्रह्मणो द्वितीये प्रहरार्द्धे0**)

यह वैवस्वतमनु का वर्नमान है, इसे भोग में यह (२८) अट्ठाईसवां कलियुग है। कलियुग के प्रथम चरण का भोग हो रहा है तथा वर्ष, ऋतु, अयन, मास, पक्ष, दिन, नक्षत्र, मुहूर्त, लग्न और पल आदि समय में हमने फलाना काम किया था और करते हैं, अर्थात् जैसे विक्रम के संवत् १६३३ फाल्गुण मास, कृष्णपक्ष, षष्ठी, शनिवार के दिन चतुर्थ प्रहर के आरम्भ में यह बात हमने लिखी है, इसी प्रकार से सब व्यवहार आर्य लोग बालक से वृद्ध पर्यन्त करते और जानते चले आये हैं। जैसे बहीखाते में मिती डालते हैं, वैसे ही महीना और वर्ष बढ़ाते घटाते चले जाते हैं। इसी प्रकार आर्य्य लोग तिथिपत्र में भी वर्ष, मास और दिन आदि लिखते चले आते हैं। और यही इतिहास आज पर्यन्त सब आर्यावर्त्त देश में एक सा वर्त्तमान हो रहा है, और सब पुस्तकों में भी इस विषय में एक ही प्रकार का लेख पाया जाता है, किसी प्रकार का इस विषय में विरोध नहीं है। इसीलिए इसको अन्यथा करने में किसी का सामर्थ्य नहीं हो सकता। क्योंकि जो सृष्टि की उत्पत्ति से लेके बराबर मितीवार लिखते न आते तो इस गिनती का हिसाब ठीक–ठीक आर्य लोगों को भी जानना कठिन होता, अन्य मनुष्यों का तो क्या ही कहना है\ और इससे यह भी सिद्ध होता है कि सृष्टि के आरम्भ से लेके आज पर्यन्त आर्य लोग ही बड़े बड़े विद्वान् और सभ्य होते चले आये हैं।

जब जैन और मुसलमान आदि लोग इस देश के इतिहास और विद्यापुस्तकों का नाश करने लगे तब आर्य लोगों ने सृष्टि के गणित का इतिहास कण्ठस्थ कर लिया और जो पुस्तक ज्योतिषशास्त्र के बच गए हैं उनमें और उनके अनुसार जो वार्षिक पेचाङ्गपत्र बनते जाते हैं इनमें भी मिती से मिती बराबर लिखी चली आती है, इसको अन्यथा कोई नहीं कर सकता।

यह वृनान्त इतिहास का इसलिये है कि पूर्वापर काल का प्रमाण यथावत् सब को विदित रहे और सृष्टि की उत्पत्ति, प्रलय तथा वेदों की उत्पत्ति के वर्षों की गिनती में किसी प्रकार का भ्रम किशी को न हो। सो यह बड़ा उनम काम है। इसको सब लोग यथावत् जान लेवें। परन्तु इस उत्तम व्यवहार को लोगों ने टका कमाने के लिए बिगाड़ रखा है, यह शोक की बात है। और टके के लोभ ने भी जो इसके पुस्तकव्यवहार को बना रक्खा, नष्ट न होने दिया। यह बड़े हर्ष की बात है। जो चारों युगों के चार भेद और उनवेफ वर्षों की घट बढ़ संख्या क्यों हुई है, इसकी व्याख्या आगे करेंगे, वहाॅ देख लेना चाहिए, यहाॅ इसका प्रसंग नहीं है इसलिए नहीं लिखा।

एतावता कथनेनैवाध्यापकैर्विलसनमोक्षमूलराद्यभिधैर्यूरोपाख्यखण्डस्थैर्मनुष्यरचितो वेदोऽस्ति, श्रुतिर्नास्तीति यदुक्तं, यच्चोक्तं–चतुर्विंशतिरेकोनत्रिंशत् त्रिंशदेकPत्रिंशच्च शतानि वर्षाणि वेदोत्पत्तौ व्यतीतानीति, तत्सर्वं भ्रममूलमस्तीति वेद्यम्। तथैव प्राकृतभाषया व्याख्यानकारिभिरप्येवमुक्तं तदपि भ्रान्तमेवास्तीति च।।

— : इति वेदोत्पनिविचार : —

भाषार्थः इससे जो अध्यापक विलसन साहेब और अध्यापक मोक्षमूलर साहेब आदि यूरोप खण्डवासी विद्वानों ने बात कही है कि– 'वेद मनुष्य के रचे हैं किन्तु श्रुति नहीं है,' उनकी यह बात ठीक नहीं है। और दूसरी यह है–कोई कहता है (२४००) चौबीस सौ वर्ष वेदों की उत्पत्ति को हुए, कोई (२६००) उनतीस सौ वर्ष, कोई (३०००) तीन हजार वर्ष और कोई कहता है (३१००) एकतीस सौ वर्ष वेदों की उत्पन्न हुए बीते हैं, उनकी यह भी बात झूठी है। इसी प्रकार जिन जिन ने अपनी अपनी देशभाषाओं में अन्यथा व्याख्यान वेदों के विषय में किया है, उन उन का भी व्याख्यान मिथ्या है। क्योंकि उन लोगों ने हम आर्य्य लोगों की नित्यप्रति की दिनचर्या का लेख और संकल्पपठन विद्या को भी यथावत् न सुना और न विचारा है। नहीं तो इतने ही विचार से यह भ्रम उन को नहीं होता। इससे यह जानना अवश्य चाहिए कि वेदों की उत्पनि परमेश्वर से ही हुई है, और जितने वर्ष अभी ऊपर गिन आये हैं उतने ही वर्ष वेदों और जगत् की उत्पत्ति में भी हो चुके हैं। इससे क्या सिद्ध हुआ कि जैसा प्रथम लिख आये हैं जब पर्यन्त हजार चतुर्युगी व्यतीत न हो चुकेंगी तब पर्यन्त ईश्वरोक्त वेद का पुस्तक, यह जगत् और हम सब मनुष्य लोग भी ईश्वर के अनुग्रह से सदा वर्नमान रहेंगे।।

।। इति वेदोत्पत्तिविचारः ।।

जोधपुर में आर्यवीरों हेतु शिविरों का आयोजन

आर्यवीर दल जोधपुर के संभागीय योग–व्यायाम प्रशिक्षण, व्यक्तित्व विकास, चरित्र निर्माण के लिये 07 दिवसीय आवासीय शिविर का आरम्भ राजस्थान आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान विजयसिंह भाटी के मुख्य आतिथ्य में पू0 आचार्य सत्यानंदजी वेदवागीश के द्वारा ध्वजारोहण से हुआ। महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मृति भवन में १६ मई से २५ मई तक चले इस शिविर में **आत्मरक्षा** के लिये मुक्केबाजी, जूडो, कराटे, लाठी, तलवार, भाला, **स्वास्थ्य रक्षा** के लिये योगासन, प्राणायाम, मल्लखम्भ, जिम्नास्टिक का, देशप्रेम और सेवा के संस्कार और शिक्षण हेतु राष्ट्रीय कैडेट कोर की थलसेना और वायुसेना दलों के अधिकारियों और सुयोग्य प्रशिक्षकों द्वारा आर्यवीरों को हथियारों और एनसीसी के कियाकलापों और उपयोगिता की जानकारी, संस्कृति के क्षरण और चारित्रिक विकास की जरूरत को देखते हुए आर्यवीरों को विद्वानों द्वारा यज्ञ–संध्या, वैदिक संस्कृति के प्रेरक **बौद्धिक** व्याख्यान देकर संस्कारित किया। शिविर संयोजक और न्यास के मन्त्री आर्य किशनलाल गहलोत ने बताया कि वर्तमान में तीव्र गति से हो रहे मोबाईल व सोशियल मीडिया के दुरूपयोग व चारित्रिक पतन के माहौल से दूर रहकर परिवार में सामंजस्य व माता–पिता के सम्मान एवं चारित्रिक विकास हेतु आर्यवीर दल जोधपुर के संचालक **डॉ. महेश परिहार** द्वारा संचालित इस शिविर में राष्ट्रीय स्तर के प्रशिक्षकों और विद्वानों द्वारा युवकों को प्रशिक्षित किया गया। जयनारायण व्यास वि.वि. के कुलपति श्रीमान् गुलाबसिंह जी चौहान के मुख्य आतिथ्य में हुए समापन समारोह में आर्यवीरों द्वारा शिविर में सीखी विधाओं का नयनाभिराम प्रदर्शन किया गया। शिविरकाल में आयोजित विशेष प्रतियोगिताओं में प्रथम तीन स्थान प्राप्त करने वाले आर्यवीरों का, सभी सुयोग्य शिक्षकों का, सेवा प्रदायकों को पुरस्कृत कर उनका उत्साहवर्द्धन किया गया। शिविर संचालन मे डॉ. रामनारायण शास्त्री, श्रीमती चन्द्रकान्ता भाटी, यशपाल आर्य, जयसिंह गहलोत, नरपतसिंह गहलोत, विक्रमसिंह सांखला, गगेन्द्र आर्य, कमलकिशोर आर्य, स्नेहलता गहलोत, रामस्वरूप आर्य, कैलाशचन्द्र आर्य, शिवराम आर्य, श्रीमती शारदा एवं श्री लक्ष्मणसिंह आर्य आदि विभिन्न आर्यसमाजों के पदाधिकारियों का सक्रिय सहयोग रहा।

प्रतिवर्ष की भॉति ग्रीष्मावकाश में आर्यसमाज जालोरियॉ का बास में प्रधान श्री श्याम आर्य आर्यसमाज में संचालित श्री सुभाष आर्य व्यायामशाला के वरिष्ठ आर्यवीरों के सहयोग से, आर्यसमाज महर्षि पाणिनिनगर में प्रधान श्री कैलाशचन्द्र आर्य, आ.वी.द. जोधपुर के संचालक डॉ0 महेश आर्य, शिक्षिका अदिति आर्या द्वारा और आर्यसमाज महामंदिर में संचालित कांतिकारी रामप्रसाद बिस्मिल शाखा में प्रधान श्री हेमसिंह जी 'दाता' के नेतृत्व में सैंकडों आर्यवीरों और आर्य वीरांगनाओं हेतु योग, लाठी व बौद्धिक प्रशिक्षण प्रातःसायं आयोजित किए जा रहे हैं।

आर्य समाज जोधपुर रातानाड़ा के १२६ वें वार्षिकोत्सव की झलकियाँ

Postal Reg. Jodhpur/ 434/2018-20

Date of Posting 9,10-06-2019
Date of Print 5-06-2019

आर्य समाज जालोरियाँ का बास व नीचे आर्य समाज महर्षि पाणिनिनगर के शिविर

सत्वाधिकारी महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मृति भवन न्यास के लिए प्रकाशक व मुद्रक विजयसिंह भाटी द्वारा महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मृति भवन न्यास, 0291-2516655 महर्षि दयानन्द मार्ग, मोहनपुरा पुलिया के पा) से प्रकाशित एवं सैनिक प्रिण्टर्स, मकराणा ऊस जोधपुर फोन नं. 9829392411 से मुद्रित
सम्पादक फोन नं. 94606490

30 सम्मानित
श्री प्रधान जी, सार्वदेशिक आर्य्य प्रतिनिधि सभा
15 हनुमानरोड़,
जिला–नई दिल्ली, पिन–110025,
प्रान्त– नई दिल्ली